वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 431
ISBN-978-93-84003-23-4

सिद्धान्त नवनीत

(भाग 1)

(श्रीमत् पुष्पदंतभूतबलि आचार्य विरचित षट्खंडागम ग्रंथ–
सिद्धान्तचिन्तामणि टीका पुस्तक 1 से पुस्तक 6 तक से संग्रहीत)

–स्वरचित टीका से संकलनकर्त्री –

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी, दिव्यशक्ति, दो बार डी. लिट. की
मानद उपाधि से अलंकृत, परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

–हिन्दी अनुवादकर्त्री –

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा श्रावण कृ. एकम् को घोषित 'श्री गौतम गणधर वर्ष' वीर निर्वाण संवत् 2540-41 (सन् 2014-2015) वर्ष के अन्तर्गत प्रज्ञाश्रमणी पूज्य आर्यिका श्री चंदनामती माताजी के 26वें आर्यिका दीक्षा दिवस श्रावण शु. ग्यारस (7 अगस्त 2014) के शुभ अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2540	मूल्य
1100 प्रतियाँ	श्रावण शु. ग्यारस, 7 अगस्त 2014	32/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :–

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी
(दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: मार्गदर्शन :–

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

–: निर्देशक एवं सम्पादक:–

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

–: प्रबंध सम्पादक :–

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	प्रस्तावना विषय सूची	पृष्ठ सं.
१.	सम्पादकीय	९
२.	प्रस्तावना	१०
३.	दो शब्द	१२
४.	हार्दिक उद्गार	१३
५.	श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त परिचय	१४
६.	दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान का परिचय	१५
७.	वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला में शिरोमणि संरक्षक	१६

क्र.सं.	ग्रंथ की विषय सूची	पृष्ठ सं.

षट्खण्डागम पुस्तक–१ (सिद्धान्तचिन्तामणि टीका से)

	णमोकार महामंत्र	१
१.	महामंत्र में अर्हंत भगवान को प्रथम नमस्कार क्यों किया ?	१
२.	महामंत्र में आचार्य, उपाध्याय, साधु को नमस्कार नहीं करना चाहिए ?	२
३.	महामंत्र में संम्पूर्ण द्वादशांग समाविष्ट है	३
४.	सरस्वती की प्रतिमा द्वादशांगवाणी–जिनवाणी रूप हैं	८
५.	अक्षर, अक्षरसमास ज्ञान ही हमें और आपको है।	११
६.	स्थापना विक्षेप से सुपाड़ी में क्षेत्रपाल स्थापना होती है	१३
७.	भावस्त्री वेदी व भाव नपुंसक वेदी मुनि बन सकते हैं न कि द्रव्य स्त्रीवेदी, द्रव्य नपुंसकवेदी	१४

षट्खण्डागम पुस्तक–२ (सिद्धान्तचिन्तामणि टीका से)

	मंगलाचरण	१९
८.	सम्यग्दृष्टि देव के मरण समय संक्लेश नहीं होता	१९
९.	द्रव्यस्त्री वेदी के पूर्ण संयम नहीं है, भावस्त्री वेदी के चौदह गुणस्थान हैं	२०

क्र.सं.	ग्रंथ की विषय सूची	पृष्ठ सं.
१०.	धनोदधि वातवलय में जल का वर्ण धवल है।	२१
११.	आहारक शरीर, मनःपर्ययज्ञान, परिहार विशुद्धि व उपशम सम्यक्त्व ये एक साथ नहीं होते हैं	२२
१२.	कदाचित, मनःपर्ययज्ञान के साथ औपशमिक सम्यक्त्व संभव है।	२३

षट्खण्डागम पुस्तक–३ (सिद्धान्तचिन्तामणि टीका से)

	मंगलाचरण	२५
१३.	संयत मुनियों की उत्कृष्ट संख्या	२५
१४.	भाव वेदी स्त्री में चौदहों गुणस्थान होते हैं। ये द्रव्य से पुरुष हैं	२८
१५.	सम्यग्दृष्टि जीवों में अल्पबहुत्व स्थान ३२ हैं। चतुर्गति की अपेक्षा कहाँ कम हैं, कहाँ अधिक है यह निरूपण है।	२९
१६.	असंख्यात प्रदेश वाले लोक में अनंत संख्या वाले जीव कैसे रह सकते हैं ?	३१
१७.	प्रमत्तसंयत के उपशम सम्यक्त्व के साथ तैजस व आहारक नहीं होते हैं।	३१
१८.	द्रव्यप्रमाणानुगम अर्थात् पुस्तक तीन से आगे के सूत्रों की रचना श्री भूतबली आचार्य ने की है। प्रारंभ के सत्प्ररूपणा सूत्र श्री पुष्पदंताचार्य ने बनाये हैं।	३२
१९.	ग्यारह प्रकार के अनंत का संक्षिप्त लक्षण	३२
२०.	मिथ्यादृष्टि अनंतानंत हैं, कभी समाप्त नहीं होंगे।	३४
२१.	मिथ्यादृष्टि अनंत लोक प्रमाण है उसका स्पष्टीकरण	३४
२२.	महामत्स्य का वेदना समुद्घात का प्रकरण	३५
२३.	श्री पद्मप्रभ के समवसरण में मुनियों की संख्या सबसे अधिक थी	३६
२४.	मनुष्यों में सबसे कम और सबसे अधिक संख्या कहाँ है ?	३६
२५.	देवगति में असंयत सम्यग्दृष्टि सबसे अधिक हैं	३७
२६.	बद्धायुष्क मनुष्य या तिर्यंच कहाँ–कहाँ जन्म ले सकते हैं	३८
२७.	स्त्री वेदी मिथ्यादृष्टि देवियों से कुछ अधिक है	३८
२८.	ज्ञान की अपेक्षा कौन से ज्ञानी कम हैं और कौन से अधिक हैं	३९
२९.	श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान का दर्शन क्यों नहीं है ?	३९

क्र.सं.	ग्रंथ की विषय सूची	पृष्ठ सं.
३०.	क्षेत्र कितने प्रकार का है ?	४०
३१.	केवली भगवान के पद्मासन या खड्गासन से समुद्घात की व्यवस्था	४०
३२.	परिहारविशुद्धि संयमी के आहारक व तैजस समुद्घात नहीं होते हैं	४२
३३.	तैजस शरीर के प्रशस्त–अप्रशस्त दो भेद हैं	४३
३४.	देवों में सबसे अधिक ज्योतिषी देव हैं।	४३
३५.	श्री भूतबलि आचार्य कहते हैं कि इन सूत्रों के वक्ता जिनेन्ददेव या गणधरदेव हैं, हम नहीं हैं	४४
	षट्खण्डागम पुस्तक–४ (सिद्धान्तचिन्तामणि टीका से)	
	मंगलाचरण	४५
३६.	महामत्स्य के शरीर के ऊपर अनेक जीव जन्म ले लेते हैं	४५
३७.	तिर्यंच अणुव्रती १६ वें स्वर्ग तक जाते हैं	४७
३८.	तिर्यंच की आयु बाँध लेने पर क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंख्यात द्वीपों के भोगभूमियों में उत्पन्न हो जाते हैं	४७
३९.	सासादन सम्यग्दृष्टि छठे नरक से निकलकर मध्यलोक में जन्म लेते हैं	४८
४०.	स्वर्गों में यहीं के दिन–रात्रि आदि से काल जाना जाता है एवं आष्टान्हिक आदि पर्व मनाये जाते हैं।	४८
४१.	विवर्द्धन कुमार आदि का नामोल्लेख	४९
४२.	अप्रमत्तसंयत मुनि तृतीय गुणस्थान प्राप्त नहीं करते	४९
४३.	असंयत सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट काल	५०
४४.	सम्मूर्च्छन तिर्यंच का संयतासंयत में उत्कृष्टकाल	५०
४५.	सयोगी केवली भगवान का जघन्य व उत्कृष्टकाल	५१
४६.	असंयत सम्यग्दृष्टि तिर्यंच का उत्कृष्टकाल	५३
४७.	संयतासंयत तिर्यंच का उत्कृष्टकाल	५३
४८.	पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्टकाल	५४
४९.	लब्ध्यपर्याप्तक में स्त्रीवेद कैसे संभव है ?	५५
५०.	सम्यग्दृष्टि भोगभूमिज तिर्यंच और तिर्यंचिनी का उत्कृष्टकाल एवं भोगभूमि में दो मास गर्भकाल है	५६

क्र.सं.	ग्रंथ की विषय सूची	पृष्ठ सं.
५१.	एकेन्द्रिय का उत्कृष्टकाल	५७
५२.	बादर एकेन्द्रिय का जघन्यकाल	५७
५३.	क्षुद्रभव ग्रहण का क्या स्वरूप है ?	५८
५४.	बादर त्रस जीवों का उत्कृष्टकाल	५९
५५.	त्रसराशि में रहने का उत्कृष्टकाल	६०
५६.	अप्रमाद और व्याघात एक साथ नहीं होते	६०
५७.	औदारिकमिश्रकाययोग में सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्टकाल	६०
५८.	स्त्री वेदी कुक्कुट मर्कट आदि का संयतासंयत काल एवं नपुंसक वेदी संयतासंयत का उत्कृष्टकाल	६१
५९.	उत्पन्न के प्रथम समय क्रोधादि कषायों का उदय	६२
६०.	संमूर्च्छन पंचेन्द्रिय के अवधिज्ञान हो सकता है	६३
६१.	लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रियों में भी चक्षुदर्शन नहीं है	६३
६२.	भव्यजीवों की राशि कभी समाप्त नहीं होगी	६४
६३.	गर्भ से लेकर आठ वर्ष में सम्यक्त्व व संयम की योग्यता है	६४
६४.	वर्तमान में कौन सा सम्यक्त्व है	६५
६५.	ऋद्धिधारी मुनि सुमेरु पर्वत के ऊर्ध्व प्रदेश तक जा सकते हैं	६५
६६.	नवग्रैवेयकों में मुनि ही जाते हैं भले ही भाव से मिथ्यादृष्टि ही क्यों न हो।	६६
	षट्खण्डागम पुस्तक–५ (सिद्धान्तचिन्तामणि टीका से)	
	मंगलाचरण	६८
६७.	असंयत सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अंतर	६८
६८.	संयतासंयत का उत्कृष्ट अंतर	६९
६९.	प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अंतर	६९
७०.	अप्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर	७०
७१.	असंयत सम्यग्दृष्टि नारकी का उत्कृष्ट अन्तर	७०
७२.	मनुष्य का अप्रमत्तसंयमी होकर उत्कृष्ट अंतर बताते हैं।	७१
७३.	संयतासंयत मनुष्य का उत्कृष्ट अंतर बतलाते हैं	७२
७४.	पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच–तिर्यंचिनी के क्षायिक भाव नहीं होता है	७२

क्र.सं.	ग्रंथ की विषय सूची	पृष्ठ सं.
७५.	भाववेद की अपेक्षा तीनों वेदों में नव गुणस्थान होते हैं,यहाँ द्रव्य से पुरुषवेदी ही है ऐसा जानना	७३
७६.	तिर्यंचों में क्षायिक सम्यग्दृष्टी असंख्यात हैं, संयतासंयत भी असंख्यात हैं	७३
७७.	देवों में असंयत सम्यग्दृष्टि असंख्यातों हैं	७४
७८.	प्रथम नरक में क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंख्यातों हैं	७६
७९.	औदारिकमिश्रकाययोगी में क्षायिक सम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।	७६
८०.	वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातों हैं एवं वेदक सम्यग्दृष्टि असंख्यातों हैं।	७७
८१.	कार्मण काययोगियों में क्षायिक सम्यग्दृष्टि संख्यात गुणित हैं	७८
८२.	भावस्त्री वेदी जो कि द्रव्य से पुरुषवेदी हैं उनके चौदहों गुणस्थान होते हैं, उनकी संख्या दिखाते हैं	७९
८३.	पुरुषवेदियों में संयतासंयत असंख्यात हैं	८१
८४.	नपुंसकवेदियों में संयतासंयत असंख्यात हैं, असंयत सम्यक्त्वी असंयत सम्यक्त्वी भी असंख्यात हैं।	८२
८५.	नपुंसकवेदी में क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंख्यातों हैं, ये प्रथम पृथ्वी नरक की अपेक्षा से कथन है।	८३
८६.	द्रव्य पुरुषवेदी जो कि भाव से नपुंसकवेदी हैं, उनके चौदहों गुणस्थान होते हैं।	८३
	षट्खण्डागम पुस्तक–६ (सिद्धान्तचिन्तामणि टीका से)	
	मंगलाचरण	
८७.	सूत्रों के ज्ञान से पापों का क्षय होता है	८४
८८.	आगम में अनुमान की आवश्यकता नहीं है वह स्वयं प्रमाण है	८४
८९.	अकाल मृत्यु होती है उसका निवारण भी कदाचित् संभव है	८५
९०.	आगाल–प्रत्यागाल के लक्षण	९२
९१.	देशोपशम व सर्वोपशम का लक्षण	९२
९२.	श्रीकृष्ण एवं विवर्द्धन कुमार आदि के नाम	९३
९३.	म्लेच्छ खण्डों के मनुष्यों का संयम स्थान	९३

क्र.सं.	ग्रंथ की विषय सूची	पृष्ठ सं.
९४.	उपशम श्रेणी चार बार एवं सकल संयम बत्तीस बार होते हैं	९४
९५.	असंख्यातों द्वीपों–समुद्रों में सम्यक्त्वी होते हैं	९४
९६.	तीर्थंकर के गर्भ–जन्म–तपकल्याणक में भी जिनबिम्ब दर्शन होता है	९५
९७.	जातिस्मरण और देवर्द्धिदर्शन में अन्तर है	९६
९८.	तिर्यंच भी सम्यक्त्व एवं संयमासंयम के साथ बारहवें स्वर्ग से ऊपर सोलहवें स्वर्ग तक जा सकते हैं	९७
९९.	असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच भी भवनवासी व व्यंतर देवों में जा सकते हैं	९७
१००.	नरक से निकलकर कोई भी बलभद्र, नारायण और चक्रवर्ती नहीं होते हैं	९७
१०१.	संसारी जीवों में सर्वोत्कृष्ट सुख व सर्वाधिक दुःख कहाँ है ?	९९
१०२.	प्रशस्ति	१००
१०३.	टिप्पणी	१०१
१०४.	षट्खण्डागम वन्दना गीत	१०२
१०५.	जिनवाणी स्तुति	१०३
१०६.	मुक्तक	१०४

सम्पादकीय

पीठाधीश स्वस्ति श्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामी

नमः ऋषभदेवाय धर्मतीर्थ – प्रवर्तिने।
सर्वा विद्या–कला–यस्मादाविर्भूता महीतले।।

'स्वाध्यायः परमं तपः' आचार्यों ने स्वाध्याय को परम तप कहा है। स्वाध्याय करने से ज्ञान की वृद्धि होती है। सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है, कर्मों का क्षय होता है, पुण का आस्रव एवं पापों की निर्जरा होती है। जिनेन्द्रदेव की पूजा, गुरुओं की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये षट्कर्म श्रावकों को प्रतिदिन करते रहना चाहिए, जिससे उनका गृहस्थ धर्म सार्थक माना है।

श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने रयणसार ग्रंथ में लिखा है–

दाणं पूया मुक्खं, सावय धम्मो ण सावया तेण विणा।
झाणज्झयणं मुक्खं, जइ धम्मे तं विणा तहा सो वि।।२२।।

अर्थात् श्रावक धर्म में दान और पूजा ये दो मुख्य हैं एवं मुनिधर्म में ध्यान और अध्ययन मुख्य होते हैं।

जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी राष्ट्रगौरव, युगप्रवर्तिका, श्रुतप्रकाशिका, तीर्थोद्धारिका, दो बार डी. लिट् की मानद उपाधि से अलंकृत, न्याय प्रभाकर, आगम निष्ठ, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी, सिद्धान्त–चक्रेश्वरी परमपूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने स्वाध्याय के द्वारा चारों अनुयोगों का तलस्पर्शी ज्ञान अर्जित करके बाल, युवा, वृद्ध, विद्वान सभी की योग्यतानुसार बाल विकास से लेकर अष्टसहस्री, नियमसार, समयसार, षट्खण्डागम जैसे ग्रंथों का लेखन, सृजन किया है। भगवान महावीर के शासन में पूज्य माता जी सर्वप्रथम आर्यिका हैं, जिन्होंने विपुल साहित्य का निर्माण किया है।

षट्खण्डागम ग्रंथ की १६ पुस्तकों पर संस्कृत टीका लेखन कार्य कोई सरल कार्य नहीं है आपने इस क्लिष्ट ग्रंथ को भी सरल संस्कृत में लिखकर एवं पूज्य आर्यिका चंदनामती माताजी ने उनका हिन्दी अनुवाद करके साधुवर्ग एवं विद्वानों को इनका स्वाध्याय सुगम करा दिया है। अब पुनः षट्खण्डागम सिद्धान्त ग्रंथ से सार–सार निकाल कर 'सिद्धान्त नवनीत' की रचना करके आपने सभी के लिए सिद्धान्त का ज्ञान सुलभ करा दिया है। इस ग्रंथ का स्वाध्याय सभी के जीवन में ज्ञान की वृद्धि में कारण होगा। वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला इसी तरह से महान–महान ग्रंथों का प्रकाशन करते हुए जिनधर्म की प्रभावना में अग्रसर हो, यही मंगल भावना है।

प्रस्तावना

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

श्रीधरसेनाचार्यं, श्रुताब्धेः पारगं नुमः।
सिद्धान्तज्ञानमद्यापि, यत्प्रसादाद्धि दृश्यते।।

श्रुत समुद्र के पारगामी श्री धरसेन आचार्य की हम वंदना करते हैं जिनकी कृपा प्रसाद से आज भी सिद्धान्त का ज्ञान दृष्टिगोचर हो रहा है। जिनके द्वारा इस धरती पर षट्खण्डागम ग्रंथ का अवतार हुआ है ऐसे श्री पुष्पदंत एवं भूतबलि आचार्य गुरुवरों को हम भक्तिपूर्वक नमन करते हैं, धवला टीका रच करके जिन्होंने भव्यों का अन्तःकरण धवल–निर्मल किया है ऐसे श्री वीरसेन मुनीन्द्र के उपकार का वर्णन कौन कर सकता है ? अर्थात् उनके द्वारा किए गए परम उपकार को शब्दों में नहीं कहा जा सकता हैं

इस कलिकाल की बीसवीं शताब्दी में प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य के रूप में प्रसिद्ध चारित्रचक्रवर्ती श्री शान्तिसागर महाराज का जैन समाज पर महान उपकार है जिन्होंने षट्खण्डागम ग्रंथ को ताड़पत्र से ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण करवाकर, विद्वानों से उसका अनुवाद करवाकर उसे ग्रंथरूप में छपवाकर समाज को प्रदान किया।

ऐसे षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ पर वर्तमान में जैनसमाज की सर्वोच्च साध्वी चारित्रचन्द्रिका परम पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने संस्कृत में "सिद्धान्तचिन्तामणि टीका" लिखकर जैन समाज पर महान उपकार किया है। १६ पुस्तकों की संस्कृत टीका लगभग १२ वर्षों में ३१०० पृष्ठों की लिखकर प्रदान की है।

प्रस्तुत पुस्तक 'सिद्धान्त नवनीत' में पूज्य माताजी ने षट्खण्डागम पुस्तक १ से लेकर पुस्तक ६ तक **"सिद्धान्तचिन्तामणि टीका"** से ज्ञानामृतरूपी पिटारे से चुन–चुनकर १०१ मोतीरूप विषयों का संकलन किया है। सभी विषय एक से एक महत्त्वपूर्ण हैं।

सर्वप्रथम पुस्तक १ से संकलित सिद्धान्त नवनीत में णमोकार मंत्र, महामंत्र में सम्पूर्ण द्वादशांग समाविष्ट है, सरस्वती की प्रतिमा द्वादशांग वाणी जिनवाणीरूप हैं, स्थापना निक्षेप से सुपाड़ी में क्षेत्रपाल स्थापना होती है आदि विषयों को संग्रहीत किया है।

षट्खण्डागम पुस्तक २ से संग्रहीत सिद्धान्त नवनीत में मंगलाचरण करते हुए सम्यग्दृष्टि देव के मरण समय संक्लेश नहीं होता, द्रव्य स्त्री वेदी के पूर्ण संयम नहीं है, भाव स्त्री वेदी के चौदह गुणस्थान हैं। आहारक शरीर, मनःपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धिसंयम व उपशम सम्यक्त्व ये एक साथ नहीं होते हैं आदि विषयों का संकलन किया है।

षट्खण्डागम पुस्तक ३ से संकलित किये गये सिद्धान्त नवनीत में मंगलाचरण करते हुए संयत मुनियों की उत्कृष्ट संख्या, सम्यग्दृष्टि जीवों में अल्पबहुत्व स्थान ३२ हैं, चतुर्गति की

अपेक्षा कहाँ कम हैं, कहाँ अधिक है इसका निरूपण है। ग्यारह प्रकार के अनंत का संक्षिप्त वर्णन, मिथ्यादृष्टि अनंतानंत है कभी समाप्त नहीं होंगे, श्री पद्मप्रभ के समवसरण में मुनियों की संख्या सबसे अधिक थी, बद्धायुष्क मनुष्य या तिर्यंच कहाँ–कहाँ जन्म ले सकते हैं, देवों में सबसे अधिक ज्योतिषी देव हैं आदि विषयों को लिया है।

षट्खण्डागम पुस्तक ४ से निकाले गये सिद्धान्त नवनीत में मंगलाचरण लिखते हुए महामत्स्य के शरीर के ऊपर अनेक जीव जन्म ले लेते हैं। तिर्यंच अणुव्रती १६वें स्वर्ग तक जाते हैं, स्वर्गों में यहीं के दिन–रात्रि आदि से काल माना जाता है एवं आष्टान्हिक आदि पर्व मनाए जाते हैं, गर्भ से लेकर आठ वर्ष में सम्यक्त्व व संयम की योग्यता है, ऋद्धिधारी मुनि सुमेरु पर्वत के ऊर्ध्व–प्रदेश तक जा सकते हैं नवग्रैवेयकों में मुनि ही जाते हैं भले ही भाव से मिथ्यादृष्टि ही क्यों न हो, आदि महत्त्वपूर्ण विषयों का वर्णन किया है।

षट्खण्डागम पुस्तक ५ से संकलित किये गये सिद्धान्त नवनीत में मंगलाचरण करते हुए लिखा है–देवों में असंयत सम्यग्दृष्टि असंख्यातों हैं, प्रथम नरक में क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंख्यातों हैं, तिर्यंचों में क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंख्यात हैं। नपुंसक वेदी में क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंख्यातों हैं, ये प्रथम पृथ्वी नरक की अपेक्षा से कथन है आदि विषयों का संकलन है।

षट्खण्डागम पुस्तक ६ से संकलित किये गये सिद्धान्त नवनीत में मंगलाचरण करते हुए लिखा है–सूत्रों के ज्ञान से पापों का क्षय होता है, आगम में अनुमान की आवश्यकता नहीं है वह स्वयं प्रमाण है, कर्मभूमियाँ जीवों की अकाल मृत्यु होती है एवं उसका निवारण भी कदाचित् संभव है, असंख्यातों द्वीपों–समुद्रों में सम्यक्त्वी होते हैं, नरक से निकलकर कोई भी बलभद्र, नारायण और चक्रवर्ती नहीं होते हैं, संसारी जीवों में सर्वोत्कृष्ट सुख व सर्वाधिक दुःख कहाँ हैं ? आदि विषयों का वर्णन है।

इस सिद्धान्त नवनीत ग्रंथ में पूज्य माताजी ने षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड की ६ पुस्तकों से नवनीत का संकलन किया है। षट्खण्डागम सिद्धान्तचिन्तामणि टीका की संस्कृत में सोलहों पुस्तकों का प्रकाशन हो चुका है। हिन्दी टीका सहित १० पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है। मैं अपना परम अहोभाग्य मानती हूँ कि इसकी हिन्दी टीका करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। उनमें से १३ पुस्तक की हिन्दी टीका हो चुकी है, शीघ्र ही सोलहों पुस्तकों की हिन्दी टीका पूर्ण होकर प्रकाशन होगा, ऐसी मंगल भावना है। छठी एवं आठवीं पुस्तक की हिन्दी टीका गणिनी ज्ञानमती माताजी ने की है।

अंत में इसकी प्रशस्ति में पूज्य माताजी ने लिखा है कि सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में से मैंने सार–सार लेकर यह नवनीत निकाला है। इसे पढ़कर आप सभी लोग सिद्धान्त के ज्ञान को प्राप्त करें यही मंगल भावना है। पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और अपने ज्ञान से सभी भव्यजीवों को सिंचित करती रहें यही मंगल कामना है।

ज्ञानमत्यार्यिका माता, जीयात् वर्षशतं भुवि।
चन्दनामतिशिष्यायाः, पूर्यात् सर्वं मनोरथें।।

दो शब्द

संघस्थ–आर्यिका सुव्रतमती

ऊँकारमयी दिव्यध्वनि से, प्रभु वीर ने जग उपकार किया।
गौतम गणधर ने द्वादशांग में, गूंथ उसे साकार किया।।
फिर परम्पराचार्यों द्वारा, शास्त्रों में लिखकर प्राप्त हुआ।
उस द्वादशांग को नमन करूँ, जिससे ज्ञानामृत प्राप्त हुआ।।

जैनशासन का सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ है–षट्खण्डागम। जैसा कि नाम से ही प्रतिभासित होता है कि जिस आगम में छह खण्डों का वर्णन हो, वह ही षट्खण्डागम है। छह खण्डों के नाम हैं–जीवस्थान, क्षुद्रकबंध, बंधस्वामित्वविचय, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबंध।

इस षट्खण्डागम ग्रंथ को श्री पुष्पदंत एवं भूतबली आचार्य ने ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी अर्थात् श्रुतपंचमी को पूर्ण किया था तब चतुर्विध संघ ने उस षट्खण्डागम ग्रंथ की पूजा करके श्रुतपंचमी पर्व मनाया था जो कि आज तक मनाया जा रहा है। वर्तमान में जैन समाज की सर्वोच्च साध्वी पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी ने इसी षट्खण्डागम सूत्र ग्रंथ पर सिद्धान्तचिन्तामणि नाम से संस्कृत टीका लिखकर १६ पुस्तकों को वीर सं. २५३३ वैशाख वदी दूज (सन् २००७) अपने ५२ वें आर्यिका दीक्षा दिवस पर लगभग ३१०० पृष्ठों में लिखकर पूर्ण की थी। उस दिन को भी हम लोग 'श्रुतज्ञान दिवस' के रूप में मनाते हैं, ग्रंथ की पूजा करते हैं।

जिस प्रकार छह खण्ड को जीतने वाले महापुरुष चक्रवर्ती कहलाते हैं, उसी प्रकार इस छह खण्डरूप आगम के ज्ञाता आचार्य श्री धरसेन स्वामी सिद्धान्त चक्रवर्ती की उपाधि से सुशोभित हुए। श्री पुष्पदंत, भूतबली आचार्य 'सिद्धान्त चक्रवर्ती ' के समान थे। वर्तमान में पूज्य माताजी को भी सोलहों ग्रंथों की टीका पूर्ण करने के उपरांत विद्वद्वर्ग एवं समाज ने मिलकर 'सिद्धान्त चक्रेश्वरी' की उपाधि से अलंकृत किया।

वर्तमान में बड़े–बड़े ग्रंथों को पढ़ने का समय नहीं है इस बात को ध्यान में रखते हुए पूज्य माताजी ने इन ग्रंथों का आद्योपांत आलोढन करके सार–सार निकालकर 'सिद्धान्त नवनीत तैयार किया है। गागर में सागर के समान ज्ञान को देने वाले इस सिद्धान्त नवनीत को पढ़कर सभी भव्यजीव सिद्धान्त का ज्ञान प्राप्त करें, यही मंगल भावना है।

पूज्य माताजी दीर्घायु हों, स्वस्थ रहें और अपना मंगल आशीर्वाद प्रदान करती रहें, इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ पूज्य माताजी के पावन चरणों में कोटि–कोटि नमन ।

हार्दिक उद्गार

संघस्थ–आर्यिका स्वर्णमती

श्री धरसेन व पुष्पदंत, आचार्य भूतबलि को वंदन।
वीरसेन गुरु को वंदूं और, गणिनी ज्ञानमती को नमन।।
इनसे ही 'चन्दनामती' यह मिला जिनागम सार है।
षट्खण्डागम ग्रंथराज को वन्दन बारम्बार है।।

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग–इन चार अनुयोगों में निबद्ध जिनवाणी को नमन करके षट्खण्डागम ग्रंथ के सूत्रों पर सिद्धान्तचिन्तामणि टीका लिखने वाली पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के चरण कमलों को कोटि–कोटि वंदन करती हूँ।

षट्खण्डागम और धवला ग्रंथों का नाम तो मैं भी बहुत सुना करती थी, लेकिन कल्पना नहीं कर पाती थी कि कभी मुझे इन्हें पढ़ने–सुनने का सौभाग्य प्राप्त होगा, किन्तु जब से पूज्य माताजी ने इन ग्रंथों पर संस्कृत टीका लिखना शुरू किया था तब से प्रतिदिन संघ में उसकी चर्चा प्रारम्भ हो गई थी, पुनः पूज्य प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी ने उस टीका का हिन्दी अनुवाद करके हम लोगों के लिए उसे बहुत ही सरल बना दिया है।

स्वाध्याय के विषय में पूज्य माताजी कई बार कहा करती हैं–

शास्त्राग्नौ मणिवद्भव्यः विशुद्धो भाति निर्वृतः।
अंगारवत्खलो दीप्तो, मली वा भस्म वा भवेत्।।

अर्थात् आचार्यों के शास्त्र–श्रुत को अग्नि की संज्ञा दी है। अग्नि भोजन भी पकाती है और जलाने का भी काम करती है। हम चाहे उसका यथायोग्य सदुपयोग करके उसे जीवनोपयोगी बना लें और चाहे उसका दुरुपयोग करके अपने शरीर को जला भी सकते हैं। इसी प्रकार सच्चे शास्त्रों को भव्य सम्यग्दृष्टि प्राणी पढ़कर अपने मन को विशुद्ध करके कर्मों का क्षयकर लेते हैं और खल—मिथ्यादृष्टि जन अपने चित्त को मलिन कर लेते हैं।

मैं अपना परम सौभाग्य मानती हूँ कि पूज्य माताजी की कृपाप्रसाद से मुझे भी षट्खण्डागम ग्रंथ को देखने का एवं पढ़ने का लाभ प्राप्त हो रहा है। यह 'सिद्धान्त नवनीत' ग्रंथ मेरे जीवन में पूर्ण श्रुतज्ञान को प्राप्त करावे, यही मंगल भावना है। पूज्य माताजी अपने उद्बोधन से हमें रत्नत्रय की वृद्धि कराती रहें, जिससे हमारा मोक्षमार्ग प्रशस्त हो, इन्हीं मंगल भावनाओं के पास पूज्य माताजी के चरणों में बारम्बार वन्दामि।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त–परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान– टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.
जन्मतिथि– आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991, (22 अक्टूबर सन् 1934)
जाति– अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र–** गोयल, **नाम–** कु. मैना
माता-पिता– श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन
आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत– ई. सन् 1952, बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन
क्षुल्लिका दीक्षा– चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम – क्षुल्लिका वीरमती
आर्यिका दीक्षा– वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।
साहित्यिक कृतित्व– अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं लगभग 300 ग्रंथों की लेखिका।
डी.लिट्. की मानद उपाधि– सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा 8 अप्रैल 2012 को ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।
तीर्थ निर्माण प्रेरणा– हस्तिनापुर में जंबूद्वीप, तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा – भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की 31-31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा, महावीर जी तीर्थ पर महावीर धाम में पंचबालयति मंदिर, शिर्डी में ज्ञानतीर्थ इत्यादि।
महोत्सव प्रेरणा– पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की तत्कालीन राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**
शैक्षणिक प्रेरणा– 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।
रथ प्रवर्तन प्रेरणा– जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

—जीवन प्रकाश जैन (प्रबंध सम्पादक)

ईसवी सन् 1972 में पूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से स्थापित उक्त संस्था के द्वारा जम्बूद्वीप रचना के निर्माण हेतु मेरठ (उ.प्र.) के ऐतिहासिक तीर्थ हस्तिनापुर में नशिया मार्ग पर जुलाई 1974 में एक भूमि क्रय की गई, जहाँ सर्वप्रथम 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की अवगाहना प्रमाण सात हाथ (सवा दस फुट) ऊँची खड्गासन प्रतिमा विराजमान करने हेतु फरवरी 1975 में एक लघुकाय जिनालय का निर्माण किया गया, जो सन् 1990 में एक अनोखे 'कमल मंदिर' के रूप में निर्मित हुआ है। यहाँ विराजमान कल्पवृक्ष भगवान महावीर से यह अतिशय क्षेत्र निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर होता हुआ नित्य नये निर्माणों के द्वारा संसार में अद्वितीय पर्यटन स्थल के रूप में प्रसिद्ध हुआ है। इस प्रतिमा के दर्शन करके भक्तगण अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं।

जम्बूद्वीप निर्माण का प्रथम चरण—जुलाई सन् 1974 में रखी गई नींव के आधार पर जम्बूद्वीप के बीचोंबीच में सर्वप्रथम आगम वर्णित सुमेरुपर्वत (101 फुट ऊँचा) का निर्माण अप्रैल सन् 1979 में एवं सन् 1985 में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण पूर्ण हुआ। सोलह जिनमंदिरों से समन्वित उस सुमेरुपर्वत के अंदर से निर्मित 136 सीढ़ियों से चढ़कर श्रद्धालु भक्त समस्त भगवन्तों के दर्शन करके जब सबसे ऊपर पाण्डुकशिला के निकट पहुँचते हैं, तो नीचे जम्बूद्वीप रचना के सभी नदी, पर्वत, मंदिर, उपवन आदि दृश्यों के साथ-साथ हस्तिनापुर के आसपास के सुदूरवर्ती ग्रामों का भी प्राकृतिक सौंदर्य देखकर फूले नहीं समाते हैं।

यात्री सुविधा—हस्तिनापुर तीर्थ में जम्बूद्वीप स्थल के पूरे परिसर में संस्थान द्वारा कार्यालय का सक्रिय संचालन किया जाता है। वहाँ यात्रियों के ठहरने हेतु आधुनिक सुविधायुक्त 200 कमरे, 50 से अधिक डीलक्स फ्लैट एवं अनेकों गेस्ट हाउस (बंगले) बने हुए हैं। इसके साथ ही यहाँ सुन्दर भोजनालय है जहाँ यात्रियों को सुविधापूर्वक शुद्ध भोजन प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त 2 किमी. दूर हस्तिनापुर सेन्ट्रल टाउन में सरकारी अस्पताल, डाकखाना, बाजार, इंटरकालेज तथा अन्य शिक्षण संस्थाएँ आदि सभी आवश्यक सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

हस्तिनापुर कैसे पहुँचे ?—भारत की राजधानी दिल्ली से 110 किमी. पश्चिमी उत्तरप्रदेश में जिला-मेरठ से 40 किमी. दूर हस्तिनापुर तीर्थ है। राजधानी दिल्ली से हस्तिनापुर के लिए अंतर्राज्यी बस अड्डे अथवा आनंद विहार बस अड्डे से उत्तरप्रदेश रोडवेज तथा डी.टी.सी. बसों की निरंतर सेवा उपलब्ध है। मेरठ से भी प्रति आधे घंटे के अंतराल से जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर पहुँचने हेतु रोडवेज की बसें सुलभता के साथ उपलब्ध रहती हैं। 'जम्बूद्वीप' के नाम से ये बसें चलती हैं जो सीधे जम्बूद्वीप के सामने ही रुकती हैं और जम्बूद्वीप से ही मेरठ, दिल्ली, तिजारा आदि यात्रा हेतु बसें उपलब्ध रहती हैं। दिल्ली और मेरठ के बीच रेल सेवा भी है। देश-विदेश के यात्रीगण हस्तिनापुर पधारकर इस धरती का स्वर्ग मानी जाने वाली 'जम्बूद्वीप रचना' के दर्शन करें और मानसिक शांति का अनुभव करते हुए मनवांछित फल प्राप्त करें, यही मंगलकामना है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खारी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।
17. श्री नाभिकुमार जैन, जैन बुक डिपो, सी-4, पी.वी.आर. प्लाजा के पीछे, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. स्व. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली
19. श्री प्रद्युम्न कुमार जैन छोटी सा., श्री अमरचंद जैन सर्राफ, लखनऊ (उ.प्र.)
20. श्रीमती शशि जैन ध.प. श्री दिनेशचंद जैन, शिवालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।

ॐ

सिद्धान्त नवनीत

षट्खण्डागम पुस्तक-१

(सिद्धान्तचिंतामणि टीका से)

णमोकार महामंत्र

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।१।।

१. सिद्धान्त नवनीत

महामंत्र में अर्हन्त भगवान को प्रथम नमस्कार क्यों किया ?

''विगताशेषलेपेषु सिद्धेषु सत्स्वर्हतां सलेपानामादौ किमिति नमस्कारः क्रियते इति चेन्नैष दोषः, गुणाधिकसिद्धेषु श्रद्धाधिक्यनिबंधनत्वात् असत्यर्हति आप्तागमपदार्थावगमो न भवेदस्मदादीनां संजातश्चैतत्प्रसादादित्युपकारापेक्षया वादावर्हन्नमस्क्रियते। न पक्षपातो दोषाय, शुभपक्षवृत्तेः श्रेयोहेतुत्वात्।'' श्रीमद् गौतम स्वामिभिः उक्तं च—

जस्संतियं धम्मपहं णिगच्छे, तस्संतियं वेणइयं पउंजे।
सक्कारए तं सिर-पंचएण[१], काएण वाया मणसा य णिच्चं।।[२]

आचार्योपाध्यायसाधूनामपि देवत्वं पूज्यत्वं च—

अरिहंत और सिद्ध का क्रम—यहाँ पर शंकाकार की शंका है कि ''सर्वप्रकार के कर्म लेप से रहित सिद्ध परमेष्ठी के विद्यमान रहते हुए अघातिया कर्मों के लेप से युक्त अरिहंतों को आदि में नमस्कार क्यों किया जाता है ?'' इसका समाधान करते हुए कहा है—

यह कोई दोष नहीं है। क्योंकि सबसे अधिक गुणवाले सिद्धों में श्रद्धा की अधिकता के कारण अरिहंत परमेष्ठी ही हैं अर्थात् अरिहंत परमेष्ठी के निमित्त से ही अधिक गुण वाले सिद्धों में सबसे अधिक श्रद्धा उत्पन्न होती है। अथवा यदि अरिहंत परमेष्ठी न होते तो हम लोगों को आप्त, आगम और पदार्थ का परिज्ञान नहीं हो सकता था। किन्तु अरिहंत परमेष्ठी के प्रसाद से हमें इस बोध की प्राप्ति हुई है। इसलिए उपकार की अपेक्षा भी आदि में अरिहंतों को नमस्कार किया जाता है।

यदि कोई कहे कि इस प्रकार आदि में अरिहंतों को नमस्कार करना तो पक्षपात है? इस पर आचार्य उत्तर देते हैं कि ऐसा पक्षपात दोषोत्पादक नहीं है किन्तु शुभ पक्ष में रहने से वह कल्याण का ही कारण है।

कहा भी है—

श्लोकार्थ—जिसके समीप धर्ममार्ग प्राप्त करे, उसके समीप विनय युक्त होकर प्रवृत्ति करनी चाहिए तथा उसका शिरपंचक अर्थात् मस्तक, दोनों हाथ और दोनों घुटने इन पंचांगों से एवं काय, वचन, मन से निरन्तर सत्कार-नमस्कार करना चाहिए।

आचार्य, उपाध्याय और साधुओं के भी देवपना तथा पूज्यपना है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. १, पृ. २५-२६)

२. सिद्धान्त नवनीत

महामंत्र में आचार्य, उपाध्याय, साधु को नमस्कार नहीं करना चाहिए ?

पुनरपि कश्चिदाह—

घातिकर्मरहितानां सकलपरमात्मनां अर्हतां अघातिकर्मविप्रमुक्तनिष्कल-परमात्मनां सिद्धानां च त्रैलोक्याधिपतिदेवानां नमस्कारो युक्तः, नाचार्यादीनामष्ट-कर्मसहितानां तेषां देवत्वाभावादिति?

न, देवो हि नाम त्रीणि रत्नानि स्वभेदतोऽनन्तभेदभिन्नानि, तद्विशिष्टो जीवोऽपि देवः, अन्यथाशेषजीवानामपि देवत्वापत्तेः। तत् आचार्यादयोऽपि देवाः, रत्नत्रयास्तित्वं प्रत्यविशेषात्।

सम्पूर्णरत्नानि देवो न तदेकदेश इति चेन्न, रत्नैकदेशस्य देवत्वाभावे समस्तस्यापि तदसत्त्वापत्तेः। न चाचार्यादिस्थितरत्नानि कृत्स्नकर्मक्षयकर्तृणि, रत्नैकदेशत्वादिति चेन्न, अग्निसमूहकार्यस्य पलालराशिदाहस्य तत्कणादप्युप-लम्भात्। तस्मादाचार्यादयोऽपि देवा इति स्थितम्[३]।

पुनरपि कोई कहते हैं—

शंका—घातिकर्म से रहित सकल परमात्मा अर्हंतों को तथा अघातिया कर्मों से रहित निकल परमात्मा सिद्धों को तो तीन लोक के अधिपति परम देव मानकर नमस्कार करना ठीक है, किन्तु आचार्य आदि जो अष्टकर्मों से युक्त हैं उन्हें नमस्कार नहीं करना चाहिए क्योंकि इनमें देवत्व का अभाव है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि अपने-अपने भेदों से अनन्त भेदरूप रत्नत्रय ही देव है, अतएव रत्नत्रय से युक्त जीव भी देव हैं अन्यथा यदि रत्नत्रय की अपेक्षा देवपना न माना जाये तो सम्पूर्ण जीवों को देवपना प्राप्त होने की आपत्ति आ जाएगी। इसलिए यह सिद्ध हुआ है कि आचार्यादिक भी रत्नत्रय के यथायोग्य धारक होने से देव हैं।

शंका—सम्पूर्ण रत्न अर्थात् पूर्णता को प्राप्त रत्नत्रय ही देव हैं, रत्नों का एक देश देव नहीं हो सकता है?

समाधान—ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि रत्नत्रय के एक देश में देवपने का अभाव होने पर उसकी समग्रता में भी देवपना नहीं बन सकता है। अर्थात् जो कार्य जिसके एक देश में नहीं देखा जाता है वह उसकी पूर्णता में कहाँ से आ सकता है ?

यहाँ पुन: शंकाकार कहता है कि "आचार्यादिक में स्थित रत्नत्रय समस्त कर्मों का क्षय करने में समर्थ नहीं हो सकते हैं क्योंकि उनमें एक देशपना ही है, पूर्णता नहीं है ? इसका समाधान करते हुए श्री वीरसेन स्वामी ने कहा है—

तुम्हारा यह कथन भी समुचित नहीं है क्योंकि जिस प्रकार पलाल राशि—घास के ढेर का दाहरूप अग्नि समूह का कार्य अग्नि के एक कण से भी होता देखा जाता है, उसी प्रकार यहाँ पर भी आचार्यादिक के विषय में भी समझना चाहिए कि वे आचार्य, उपाध्याय, साधु सभी देव हैं यह बात निश्चित हो जाती है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. १, पृ. २६-२७)

३. सिद्धान्त नवनीत

महामंत्र में सम्पूर्ण द्वादशांग समाविष्ट है

णमोकारमहामंत्रस्याक्षरपदमात्रादयो वर्ण्यन्ते—

अस्मिन् महामंत्रे पंचत्रिंशदक्षरा:, पंच पदानि, चतुस्त्रिंशत् स्वरा: त्रिंशद् व्यंजनानि सन्ति। अत्र सर्वे वर्णा: अजन्ता:, तर्हि पंचत्रिंशदक्षरेषु चतुस्त्रिंशत्स्वरा: कथमिति चेत्, उच्यन्ते-'णमो अरिहंताणं' अस्मिन् पदे सप्ताक्षरा: षट् स्वरा: ज्ञातव्या:। मंत्रशास्त्रस्य व्याकरणानुसारेण 'अरिहंताणं' अस्याकारस्य लोप: भवति। प्राकृतव्याकरणे "एङ:" नेत्यनुवर्तते। एङित्येदोतौ। एदोतो: संस्कृतोक्त: सन्धि:

प्राकृते तु न भवति। यथा-देवो अहिणंदणो, अहो अच्चरिअं, इत्यादि। उपर्युक्तसूत्रानुसारेण सन्धिर्न भवत्यत: अकारस्यास्तित्वं यथावत् दृश्यते, अकारस्य लोप: खंडाकारो वा नास्ति। किन्तु मंत्रशास्त्रे 'बहुलम्' इति सूत्रानुसारेण 'स्वरयोरव्यवधाने प्रकृतिभावो लोपो वैकस्य' इति नियमेन 'अ लोपो' विकल्पेनात: अस्मिन् पदे षडेव स्वरा:। इति न्यायेन चतुस्त्रिंशत्स्वरा भवन्ति।[४]

तथैव अष्टपंचाशन्मात्रा: सन्ति। तावदष्टपंचाशन्मात्रा दर्शयन्ति—

। ऽ । । ऽ ऽ ऽ   । ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ ऽ
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
। ऽ   । ऽ ऽ ऽ ऽ   । ऽ   ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

अस्मिन् मंत्रे प्रथमपदे एकादश (११) द्वितीयपदे अष्टौ (८) तृतीय पदे एकादश (११) चतुर्थपदे द्वादश (१२) पंचमपदे षोडश (१६) मात्रा गण्यन्ते (५८) अथवा 'अरिहंताणं' अस्य अकारलोपस्य मात्राभावे 'सिद्धाणं' इति पदे संयुक्ताक्षरस्य पूर्वो दीर्घ: इति नियमेनापि अष्टपंचाशन्मात्रा: सन्तीति ज्ञातव्यं।

अत्र मंत्रस्य विश्लेषणे कृते सति—

ण्+अ+म्+ओ+अ+र्+इ+ह्+अं+त्+आ+ण्+अं।
ण्+अ+म्+ओ+स्+इ+द्+ध्+आ+ण्+अं।
ण्+अ+म्+ओ+आ+इ+र्+इ+य्+आ+ण्+अं।
ण्+अ+म्+ओ+उ+व्+अ+ज्+झ्+आ+य्+आ+ण्+अं।
ण्+अ+म्+ओ+ल्+ओ+ए+स्+अ+व्+व्+अ+स्+आ+ह्+ऊ+ण्+अं।

एषु स्वरव्यञ्जनानां पृथक्करणे चतुस्त्रिंशत्स्वरा: त्रिंशद्व्यञ्जनानि इति चतु:षष्टि: वर्णा: भवन्ति।

किं च—'द्धा ज्झा व्व' इति संयुक्ताक्षराणां त्रय एव वर्णा गृहीता अत्र। पुनरत्र "अ, इ, उ, ए", "ज, झ, ण, त, द, ध, य, र, ल, व, स, ह" इति मूलस्वरव्यञ्जनानि समाहितानि भवन्ति। तथा च मूलवर्णा अपि चतु:षष्टिरेव। अतएव अस्मिन् महामंत्रे द्वादशांग: समाहितोऽस्ति—

"चउसट्ठिपदं विरलिय, दुगं च दाऊण संगुणं किच्चा।
रूऊणं च कए पुण, सुदणाणस्सक्खरा होंति।।"

इति नियमेन गुणकारे कृते सति—

एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता।
सुण्णं णव पण पंच य, एक्कं छक्केक्कगो य पणयं च।।

इति गाथासूत्रेण—

''१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५'' समस्तद्वादशांगश्रुतज्ञानस्याक्षराः भवन्ति। अतएव णमोकारमहामंत्रे सर्वं द्वादशांगश्रुतज्ञानं समाहितं वर्तते।[५] अथवायं मंत्रो द्वादशांगश्रुतज्ञानरूप एव। सर्वमंत्राणामाकरश्च वर्तते। अस्य माहात्म्यं शारदापि वर्णयितुं न शक्नोति। उक्तं च श्रीमदुमास्वामिना—

एकत्र पंचगुरु मंत्रपदाक्षराणि, विश्वत्रयं पुनरनन्तगुणं परत्र।
यो धारयेत्किल तुलानुगतं तथापि, वंदे महागुरुतरं परमेष्ठिमंत्रम्।।

अत्रपर्यन्तं णमोकारमहामंगलगाथासूत्रस्य संक्षिप्तार्थः कृतः।

णमोकार महामंत्र के अक्षर-पद-मात्रा आदि का वर्णन करते हैं—

इस महामंत्र में ३५ अक्षर हैं, पाँच पद हैं, चौंतीस स्वर हैं और तीस व्यंजन हैं। यहाँ सभी वर्ण अजन्त हैं तब पैंतीस अक्षरों में चौंतीस स्वर कैसे हो सकते हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं—

''णमो अरिहंताणं'' इस प्रथम पद में कुल सात अक्षर हैं जिनमें ६ स्वर जानना चाहिए। मंत्र व्याकरण शास्त्र के अनुसार 'अरिहंताणं' पद के अकार का लोप हो जाता है।

प्राकृत व्याकरण में ''एङः''-नेत्यनुवर्तते। एङित्येदोतौ। एदोतोः संस्कृतोक्तः सन्धिः प्राकृते तु न भवति। यथा देवो अहिणंदणो, अहो अच्चरिअं। इत्यादि सूत्र के अनुसार संधि नहीं होती है अतः अकार का अस्तित्व ज्यों का त्यों रहता है, अकार का लोप अथवा खंडाकार (ऽ) नहीं होता है। किन्तु मंत्रशास्त्र में ''बहुलम्'' इस सूत्र के अनुसार 'स्वरयोरव्यवधाने प्रकृतिभावो लोपो वैकस्य' इस नियम से 'अ' का लोप विकल्प से हो जाता है, अतः 'णमो अरिहंताणं' इस पद में छह स्वर ही माने गये हैं। इस न्याय से पूरे णमोकार मंत्र में चौंतीस स्वर होते हैं। इसी प्रकार से उसमें अट्ठावन मात्रा हैं। उन अट्ठावन मात्राओं का दिग्दर्शन कराते हैं-

। ऽ । । ऽ ऽ ऽ । ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ ऽ
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
। ऽ । ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ ऽ
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

इस मंत्र के प्रथम पद में ग्यारह मात्राएँ हैं, द्वितीय पद में आठ, तृतीय पद में ग्यारह, चतुर्थ पद में बारह और पंचम पद में सोलह मात्राएँ ऐसे कुल मिलाकर ११+८+११+१२+१६=५८ मात्राएँ हैं। अथवा अरिहंताणं के अकार का लोप हो जाने पर एक मात्रा का वहाँ अभाव हो गया और ''सिद्धाणं'' इस पद में ''संयुक्ताक्षर के पूर्व का

अक्षर दीर्घ हो जाता है'' इस नियम से भी अट्ठावन मात्राएँ हो जाती हैं।

भावार्थ—यहाँ त्रिविक्रम प्राकृत व्याकरण के अनुसार नियम बताया है कि एकार और ओकार से अवर्ण के आने पर संधि नही होती है इसीलिए णमो अरिहंताणं में ओ के बाद अ ज्यों का त्यों रखा गया है किन्तु मंत्र शास्त्र के विधान से अ का लोप कर देने पर णमो अरिहंताणं पद में १० मात्राएँ ही रह जाती हैं और इसी प्रकार से ५८ मात्राओं का जोड़ भी समुचित बैठता है। तब १०+९+११+१२+१६=५८ का योग बन जाता है।

इस मंत्र का विश्लेषण करने पर—

ण्+अ+म्+ओ+अ+र्+इ+ह्+अं+त्+आ+ण्+अं।
ण्+अ+म्+ओ+स्+इ+द्+ध्+आ+ण्+अं।
ण्+अ+म्+ओ+आ+इ+र्+इ+य्+आ+ण्+अं।
ण्+अ+म्+ओ+उ+व्+अ+ज्+झ्+आ+य्+आ+ण्+अं।
ण्+अ+म्+ओ+ल्+ओ+ए+स्+अ+व्+व्+अ+स्+आ+ह्+ऊ+ण्+अं।

इन सभी वर्णों में स्वर और व्यंजन पृथक् करने पर चौंतीस स्वर और तीस व्यंजन इस प्रकार चौंसठ वर्ण होते हैं। क्योंकि यहाँ ''द्धा ज्झा व्व'' इन संयुक्ताक्षरों के तीन वर्ण (व्यंजन) ही ग्रहण किए हैं न कि छह, पुनः यहाँ ''अ इ उ ए'' ''ज झ ण त द ध य र ल व स ह'' ये स्वर व्यंजन ही मूलरूप से इस मंत्र में समाहित हैं तथा मूलवर्ण भी चौंसठ ही होते हैं।

भावार्थ—इस महामंत्र में समस्त स्वर-व्यंजनों के अक्षर जोड़ने पर तो ६७ वर्ण होते हैं किन्तु जहाँ इसकी व्याख्या मिलती है वहाँ ६४ अक्षर ही माने गये हैं किन्तु कहीं खुलासा नहीं आया कि कौन से वर्णों को इसमें नहीं जोड़ा गया है। अतः संस्कृत टीकाकर्त्री विदुषी आर्यिका पूज्य गणिनी श्री ज्ञानमती माताजी ने उपर्युक्त तीन वर्णों के संयुक्ताक्षरों में एक-एक व्यंजन हटा कर ६४ मूलवर्णों की संख्या का दिग्दर्शन कराया है जो समुचित ही प्रतीत होता है।

अतएव इस महामंत्र में सम्पूर्ण द्वादशांग श्रुत समाहित है, ऐसा जानना चाहिए।

गाथार्थ—उक्त चौंसठ अक्षरों को अलग-अलग लिखकर (विरलन करके) प्रत्येक के ऊपर दो का अंक देकर परस्पर में सम्पूर्ण दो के अंकों का गुणा करने से लब्ध—प्राप्त हुई राशि—संख्या में एक घटा देने से जो प्रमाण रहता है उतने ही श्रुतज्ञान के अक्षर होते हैं।

इस नियम से गुणकार करने पर—

गाथार्थ—एक, आठ, चार, चार, छह, सात, चार, चार, शून्य, सात, तीन, सात, शून्य, नौ, पाँच, पाँच, एक, छह, एक, पाँच यह संख्या आती है।

इस गाथा सूत्र के अनुसार—१८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ ये समस्त द्वादशांग रूप श्रुतज्ञान के अक्षर होते हैं। अतएव णमोकार महामंत्र में द्वादशांगरूप समस्त—सम्पूर्ण श्रुतज्ञान समाहित है ऐसा जानना चाहिए अथवा यह मंत्र बारह अंगमयी श्रुतज्ञान रूप ही है, समस्त मंत्रों की यह खानि है अर्थात् इस मंत्र से ही सभी मंत्र उत्पन्न होते हैं अतः ८४ लाख मंत्रों का उद्भव इस णमोकार मंत्र से ही माना जाता है। इसका माहात्म्य—अतिशय शारदा माता—साक्षात् सरस्वती देवी भी वर्णन करने में समर्थ नहीं है।

श्री उमास्वामी आचार्यवर्य ने कहा भी है—

श्लोकार्थ—यदि कोई व्यक्ति तराजू के एक पलड़े पर पंचपरमेष्ठी के णमोकार के पद और अक्षरों को और दूसरे पलड़े पर अनन्तगुणात्मक तीनों लोकों को रखकर तुलना करें तो भी वह णमोकार मंत्र वाले पलड़े को ही अधिक भारी (वजनदार) अनुभव करेगा, उस महान गौरवशाली णमोकार मंत्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—णमोकार मंत्र पूजन की जयमाला में भी लिखा है कि—

—शेर छंद—

इक ओर तराजू पे अखिल गुण को चढ़ाऊँ।
इक ओर महामंत्र अक्षरों को धराऊँ।।
इस मंत्र के पलड़े को उठा ना सके कोई।
महिमा अनन्त यह धरे न इस सदृश कोई।।

तात्पर्य यह है कि यह पंचनमस्कार मंत्र तीनों लोकों में सारभूत—महान है, इसके चिन्तन, मनन और ध्यान से परमेष्ठी पदों की प्राप्ति तो परम्परा से होती ही है तथा यह संसार में भी लौकिक सम्पदाओं को प्रदान कराता है। पुराण ग्रंथों में अनेकों उदाहरण मिलते हैं कि इस मंत्र को तिर्यंच प्राणियों को भी मरणासन्न अवस्था में सुनाने से उनको देवगति प्राप्त हो गई। इसका माहात्म्य जानकर योगीजन भी जीवन के अन्तकाल तक इस महामंत्र का आश्रय लेकर अपने समाधिमरण की सिद्धि करते हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. १, पृ. २७ से ३०)

४. सिद्धान्त नवनीत

सरस्वती की प्रतिमा द्वादशांगवाणी —जिनवाणी रूप हैं

इयं द्वादशांगवाणी ग्रन्थेषु श्रुतदेवीरूपेणापि वर्णिताऽस्ति।
उक्तं च प्रतिष्ठातिलकग्रन्थे—

—आर्याछन्दः —

बारहअंगंगिज्जा-दंसणतिलया चरित्तवत्थहरा।
चोद्दसपुव्वाहरणा, ठावे दव्वा य सुयदेवी।।१।।

—अनुष्टुप् छंदः —

आचारशिरसं सूत्र-कृतवक्त्रां सुकंठिकाम्।
स्थानेन समवायांग-व्याख्याप्रज्ञप्तिदोर्लताम् ।।२।।
वाग्देवतां ज्ञातृकथो-पासकाध्ययनस्तनीम्।
अंतकृद्दशसन्नाभि - मनुत्तरदशांगतः।।३।।
सुनितम्बां सुजघनां, प्रश्नव्याकरणश्रुतात्।
विपाकसूत्रदृग्वाद-चरणां चरणाम्बराम्।।४।।
सम्यक्त्वतिलकां पूर्व-चतुर्दशविभूषणाम्।
तावत्प्रकीर्णकोदीर्ण-चारुपत्रांकुरश्रियम्।।५।।
आप्तदृष्टप्रवाहौघ - द्रव्यभावाधिदेवताम्।
परब्रह्मपथादृप्तां, स्यादुक्तिं भुक्तिमुक्तिदाम्।।६।।

—पुनश्च-मालिनीछंदः —

सकलयुवतिसृष्टेरम्ब! चूड़ामणिस्तवं, त्वमसि गुणसुपुष्टेर्धर्मसृष्टेश्च मूलम्।
त्वमसि च जिनवाणि! स्वेष्टमुक्त्यंगमुख्या। तदिह तव पदाब्जं भूरिभक्त्या नमामः।।

श्रीवीरसेनाचार्येणापि प्रोक्तं —

बारहअंगंगिज्जा वियलिय-मल-मूढ-दंसणुत्तिलया।
विविह-वर-चरण-भूसा पसियउ सुय-देवया सुइरं[६]।।२।।

अन्यत्र चापि—

अंगंगबज्झणिम्मी, अणाइमज्झंत-णिम्मलंगाए।
सुयदेवय-अंबाए, णमो सया चक्खुमइयाए[७]।।४।।

सरस्वतीस्तोत्रेऽपि सरस्वतीदेव्या लक्षणानि सन्ति। यथा—

चन्द्रार्ककोटिघटितोज्ज्वलदिव्यमूर्ते! श्रीचन्द्रिकाकलितनिर्मलशुभ्रवासे!।
कामार्थदे! च कलहंससमाधिरूढे! वागीश्वरि! प्रतिदिनं मम रक्ष देवि[८]।।१।।

अन्यच्च—

सरस्वती मया दृष्टा, दिव्या कमललोचना।
हंसस्कंधसमारूढा, वीणापुस्तकधारिणी[९]।।

अस्याः सरस्वतीमातुः षोडशनामान्यपि गीयन्ते—

भारती, सरस्वती, शारदा, हंसगामिनी, विदुषांमाता, वागीश्वरी, कुमारी, ब्रह्मचारिणी, जगन्माता, ब्राह्मणी, ब्रह्माणी, वरदा, वाणी, भाषा, श्रुतदेवी गौश्चेति[१०]।

अन्यत्र—अष्टोत्तरशतनाममंत्राः[११] अपि विद्यन्ते।

सरस्वतीदेव्याः मूर्तयो जैनमंदिरेषु अपि दृश्यन्ते। नेयं चतुर्णिकायदेवानां देवी। प्रत्युत द्वादशांगजिनवाणी स्वरूपा माता एव अतएव इयं मुनिभिरपि वंद्या भवति इति ज्ञातव्यः। वस्त्रालंकारभूषितापि न सरागिणी वस्त्रवेष्टितशास्त्रमिव सर्वदा पूज्या एव सर्वैस्तस्मान्नाशंकनीयं किंचिदपि विद्वद्भिः।

यह द्वादशांग वाणी ग्रंथों में श्रुतदेवीरूप से भी वर्णित की गई है।

प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में कहा भी है–

गाथार्थ— श्रुतदेवी के बारह अंग हैं, सम्यग्दर्शन यह तिलक है, चारित्र उनका वस्त्र है, चौदह पूर्व उनके आभरण हैं ऐसी कल्पना करके श्रुतदेवी की स्थापना करनी चाहिए।

बारह अंगों में से प्रथम जो "आचारांग" है, वह श्रुतदेवी-सरस्वती देवी का मस्तक है, "सूत्रकृतांग" मुख है, "स्थानांग" कण्ठ है, समवायांग और व्याख्याप्रज्ञप्ति ये दोनों अंग उनकी दोनों भुजाएँ हैं, ज्ञातृकथांग और उपासकाध्ययनांग ये दोनों अंग उस सरस्वती देवी के दो स्तन हैं, अंतकृद्दशांग यह नाभि है, अनुत्तरदशांग श्रुतदेवी का नितम्ब है, प्रश्नव्याकरणांग यह जघन भाग है, विपाकसूत्रांग और दृष्टिवादांग ये दोनों अंग उन सरस्वती देवी के दोनों पैर हैं। "सम्यक्त्व" यह उनका तिलक है, चौदह पूर्व अलंकार हैं और "प्रकीर्णक श्रुत" सुन्दर बेल-बूटे सदृश हैं। ऐसी कल्पना करके यहाँ पर द्वादशांग जिनवाणी को सरस्वती देवी के रूप में लिया गया है।

श्री जिनेन्द्रदेव ने सर्व पदार्थों की सम्पूर्ण पर्यायों को देख लिया है, उन सर्व द्रव्य पर्यायों की यह "श्रुतदेवता" अधिष्ठात्री देवी हैं अर्थात् इनके आश्रय से पदार्थों की सर्व अवस्थाओं का ज्ञान होता है। परमब्रह्म के मार्ग का अवलोकन करने वाले लोगों के लिए यह स्याद्वाद के रहस्य को बतलाने वाली है तथा भव्यों के लिए भुक्ति और मुक्ति को देने वाली ऐसी यह सरस्वती माता है।

हे अम्ब! आप सम्पूर्ण स्त्रियों की सृष्टि में चूड़ामणि हो। आपसे ही धर्म की और

गुणों की उत्पत्ति होती है। आप मुक्ति के लिए प्रमुख कारण हो, इसलिए मैं अतीव भक्तिपूर्वक आपके चरणकमलों को नमस्कार करता हूँ।

श्रीवीरसेनाचार्य ने भी कहा है—

गाथार्थ— जो श्रुतज्ञान के प्रसिद्ध बारह अंगों से ग्रहण करने योग्य हैं अर्थात् बारह अंगों का समूह ही जिसका शरीर है, जो सर्व प्रकार के मल (अतीचार) और तीन मूढ़ताओं से रहित सम्यग्दर्शन रूप उन्नत तिलक से विराजमान है और नाना प्रकार के निर्मल चारित्र ही जिनके आभूषण हैं ऐसी भगवती श्रुतदेवता चिरकाल तक प्रसन्न रहो।

अन्यत्र भी कहा है—

गाथार्थ— जिसका आदि-मध्य और अन्त से रहित निर्मल शरीर, अंग और अंगबाह्य से निर्मित है और जो सदा चक्षुष्मती अर्थात् जागृतचक्षु हैं ऐसी श्रुतदेवी माता को नमस्कार हो।

सरस्वती स्तोत्र में भी सरस्वती देवी के लक्षण कहते हैं। जैसे—

श्लोकार्थ— करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा के एकत्रित तेज से भी अधिक तेज धारण करने वाली, चन्द्र किरण के समान अत्यंत स्वच्छ एवं श्वेत वस्त्र को धारण करने वाली तथा कलहंस पक्षी पर आरूढ़ दिव्यमूर्ति श्री सरस्वती देवी हमारी प्रतिदिन रक्षा करें।

अन्यत्र भी कहा है—

श्लोकार्थ— दिव्य कमल के समान नेत्रों वाली, हंस वाहन पर आरूढ़, वीणा और पुस्तक को हाथ में धारण करने वाली सरस्वती देवी मैंने देखी है।

उस सरस्वती माता के सोलह नाम भी गाये जाते हैं—

१. भारती २. सरस्वती ३. शारदा ४. हंसगामिनी ५. विद्वानों की माता ६. वागीश्वरी ७. कुमारी ८. ब्रह्मचारिणी ९. जगन्माता १०. ब्राह्मिणी ११. ब्रह्माणी १२. वरदा १३. वाणी १४. भाषा १५. श्रुतदेवी और १६. गो।

अन्यत्र एक सौ आठ नाम मंत्र भी सुने जाते हैं।

सरस्वती देवी की मूर्ति जैन मंदिरों में भी देखी जाती हैं, ये चार निकाय वाले देवों में से किसी निकाय की देवी नहीं हैं बल्कि द्वादशांग जिनवाणी स्वरूप माता ही हैं इसलिए मुनियों के द्वारा भी वंद्य हैं ऐसा जानना चाहिए। वस्त्र-अलंकारों से भूषित होने पर भी वे सरागी नहीं हैं। वस्त्र से वेष्टित शास्त्र के समान वे सरस्वती की प्रतिमाएँ भी सभी के द्वारा सर्वदा पूज्य ही हैं इसलिए विद्वानों को इस विषय में किंचित् भी शंका नहीं करनी चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. १, पृ. ६६-६७-६८)

५. सिद्धान्त नवनीत

अक्षर, अक्षरसमास ज्ञान ही हमें और आपको है

अक्षरज्ञानं कथ्यते—

सर्वोत्कृष्टपर्यायसमासज्ञानादनन्तगुणमर्थाक्षरज्ञानं भवति। अस्य विस्तरः—

रूपोनैकट्ठमात्रापुनरुक्ताक्षरसंदर्भरूपद्वादशांगश्रुतस्कंधजनितार्थज्ञानं श्रुतकेवलमित्युच्यते। तस्य श्रुत-केवलस्य संख्यातभागमात्रं अर्थाक्षरज्ञान-मित्युच्यते। अक्षराज्जातं ज्ञानं अक्षरज्ञानं अर्थविषयं अर्थस्य ग्राहकं ज्ञानं अर्थाक्षरज्ञानं।

अथवा त्रिविधमक्षरं—लब्ध्यक्षरं निर्वृत्त्यक्षरं स्थापनाक्षरं चेति। तत्र पर्यायज्ञानावरणप्रभृतिश्रुतकेवलज्ञाना-वरणपर्यंतक्षयोपशमादुद्भूतात्मनोऽर्थग्रहण-शक्तिर्लब्धिः भावेन्द्रियं, तद्रूपं अक्षरं लब्ध्यक्षरं, अक्षर-ज्ञानोत्पत्तिहेतुत्वात्। कंठोष्ठताल्वादिस्थान-स्पष्टतादिकरण-प्रयत्ननिर्वर्त्त्यमानस्वरूपं अकारादि-ककारादि-स्वरव्यञ्जनरूपं मूलवर्णतत्संयोगादिसंस्थानं निर्वृत्त्यक्षरं। पुस्तकेषु तत्तद्देशानुरूपतया लिखितसंस्थानं स्थापनाक्षरम्। एवंविधैकाक्षरश्रवणसंजातार्थ-ज्ञानमेकाक्षरश्रुतज्ञानमिति जिनैः कथितत्वात् किंचित्प्रतिपादितम्।

अत्र श्रुतनिबद्धविषयप्रमाणं दर्श्यते—

पण्णवणिज्जा भावा अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण अणंतभागो सुदणिबद्धो।।३३४।।[१२]

अनभिलाप्यानां अवाग्विषयाणां केवलं केवलज्ञानगोचराणां भावानां जीवाद्यर्थानां अनंतैकभागमात्राः भावाः जीवाद्यर्थाः प्रज्ञापनीयाः तीर्थकरसातिशयदिव्यध्वनिप्रतिपाद्या भवन्ति। पुनः प्रज्ञापनीयानां भावानां जीवाद्यर्थानां अनंतैकभागः श्रुतनिबद्धः द्वादशांगश्रुतस्कंधस्य निबद्धः भवतीत्यर्थः।[१३]

अक्षरसमासलक्षणं कथ्यते—

एकाक्षरजनितार्थज्ञानस्योपरि तु पुनः पूर्वोक्तषट्स्थानवृद्धिक्रमरहिततया एकैकाक्षरेणैव वर्धमानाः द्व्यक्षर-त्र्यक्षरादिरूपोनैकपदाक्षरमात्रपर्यंताक्षरसमुदाय-श्रवणसंजनिताक्षरसमासज्ञानविकल्पाः संख्येयाः द्विरूपोनैकपदाक्षरप्रमितागताः।

वर्तमानकाले इमे अक्षर-अक्षरसमासज्ञाने एवास्माकं विद्येते इति अवबुध्यते।

अक्षरज्ञान को कहते हैं—

सर्वोत्कृष्ट पर्याय समास ज्ञान को अनंत से गुणा करने पर अर्थाक्षर श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है। इसी का विस्तार करते हैं—

एक कम एक ही मात्र अपुनरुक्त अक्षरों की रचना रूप द्वादशांग श्रुतस्कन्ध से उत्पन्न हुए ज्ञान को श्रुतकेवलज्ञान कहते हैं। उस श्रुतकेवलज्ञान का संख्यातभागमात्र अर्थाक्षरज्ञान कहलाता है। अक्षर से उत्पन्न हुआ ज्ञान अक्षरज्ञान है, अर्थ के विषय को अथवा अर्थ के ग्राहक ज्ञान को अर्थाक्षरज्ञान कहते हैं।

अथवा अक्षर तीन प्रकार का है—लब्ध्यक्षर, निर्वृत्यक्षर और स्थापनाक्षर। उनमें से पर्याय ज्ञानावरण से लेकर श्रुतकेवलज्ञानावरण पर्यन्त के क्षयोपशम से उत्पन्न आत्मा के अर्थ को ग्रहण करने की शक्ति लब्धिरूप भावेन्द्रिय है। उस रूप अक्षर लब्ध्यक्षर है क्योंकि वह अक्षर ज्ञान की उत्पत्ति में कारण है। कण्ठ, ओष्ठ, तालु आदि स्थानों की हलन-चलन आदि रूप क्रिया तथा प्रयत्न से जिनके स्वरूप की रचना होती है वे अकारादि स्वर, ककारादि व्यंजनरूप मूलवर्ण और उनके संयोग से बने अक्षर निर्वृत्यअक्षर हैं। पुस्तकों में उस-उस देश के अनुरूप लिखित अकारादि का आकार स्थापनाक्षर है। इस प्रकार के एक अक्षर के सुनने पर उत्पन्न हुआ अर्थज्ञान एकाक्षर श्रुतज्ञान है ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है। उसी के आधार से मैंने किंचित् कहा है।

अब श्रुत के विषय को तथा श्रुत में कितना निबद्ध है इसे कहते हैं—

गाथार्थ—अनभिलप्य पदार्थों के अनंतवें भाग प्रमाण प्रज्ञापनीय पदार्थ होते हैं और प्रज्ञापनीय पदार्थों के अनंतवें भाग प्रमाण श्रुत में निबद्ध है।।३३४।।

जो भाव अनभिलप्य अर्थात् वचन के द्वारा कहने में नहीं आ सकते, मात्र केवलज्ञान के ही विषय हैं ऐसे पदार्थ जीवादि के अनंतवें भाग मात्र प्रज्ञापनीय हैं अर्थात् तीर्थंकर की सातिशय दिव्यध्वनि के द्वारा कहे जाते हैं। पुनः प्रज्ञापनीय जीवादि पदार्थों का अनंतवाँ भाग द्वादशांग श्रुतस्कन्ध के विषयरूप से निबद्ध होता है ऐसा भावार्थ हुआ।

अब अक्षर समास का लक्षण कहा जाता है—

एक अक्षर से उत्पन्न अर्थज्ञान के ऊपर पूर्वोक्त षट्स्थान पतित वृद्धि के क्रम के बिना एक-एक अक्षर बढ़ते हुए दो अक्षर, तीन अक्षर आदि रूप एक हीन पद के अक्षर पर्यन्त अक्षर समूह के सुनने से उत्पन्न अक्षरसमास ज्ञान के विकल्प संख्यात हैं अर्थात् दो हीन पद के अक्षर प्रमाण हैं।

वर्तमान काल में ये अक्षर और अक्षरसमास ज्ञान ही हम लोगों के हैं ऐसा माना जाता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. १, पृ. ८५-८६)

६. सिद्धान्त नवनीत

स्थापना निक्षेप से सुपाड़ी में क्षेत्रपाल स्थापना होती है

स्थापनानिक्षेपः—

तत्र स्थापनामंगलं नाम आहितस्य नाम्नः अन्यस्य सोऽयमिति स्थापना स्थापनामंगलं। सा द्विविधा सद्भावासद्भावस्थापना चेति। तत्राकारवति वस्तुनि सद्भावस्थापना यथा चन्द्रप्रभप्रतिमायां सोऽयं चन्द्रप्रभो भगवान्, तद्विपरीते असद्भावस्थापना यथा पूगादिषु क्षेत्रपालस्थापना इति।[१४]

टीकार्थ—मंगल में स्थापना निक्षेप दिखाते हैं—

किसी नाम को धारण करने वाले दूसरे पदार्थ की 'वह यह है' इस प्रकार स्थापना करने को स्थापना कहते हैं। वह स्थापना दो प्रकार की है-सद्भावस्थापना, असद्भावस्थापना। इन दोनों में से आकारवान वस्तु में सद्भाव स्थापना होती है और इससे विपरीत असद्भावस्थापना जाननी चाहिए।

उनमें स्थापना मंगल में किसी दूसरे नाम को धारण करने वाले पदार्थ में "यह वही है" इस प्रकार स्थापना करने को 'स्थापना मंगल' कहते हैं। वह स्थापना दो प्रकार की है—सद्भाव स्थापना और असद्भाव स्थापना। उनमें से किसी आकार वाली वस्तु में सद्भाव स्थापना होती है। जैसे—चन्द्रप्रभ की प्रतिमा में 'ये चन्द्रप्रभ भगवान् हैं' ऐसा मानना, इससे विपरीत में—बिना आकार वाली वस्तु में असद्भावस्थापना होती है, जैसे—सुपारी, नारियल आदि में क्षेत्रपाल की स्थापना कर लेना।

भावार्थ—इन्हें तदाकार और अतदाकार स्थापना के नाम से भी जाना जाता है। ये दोनों स्थापनाएँ वर्तमान में व्यवहार में प्रचलित हैं। पंचपरमेष्ठी, नवदेवता, पंचबालयति, चौबीस तीर्थंकर, भरत, बाहुबली आदि प्रतिमाओं की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सद्भाव स्थापना मंगल को ही दर्शाने वाली है तथा क्षेत्रपाल आदि की स्थापना जो नारियल, सुपारी आदि से की जाती है वह असद्भाव स्थापना की प्रतीक है एवं अनेक मंदिरों में इनकी तदाकार प्रतिमाएँ भी देखी जाती हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. १, पृ. ३२)

७. सिद्धान्त नवनीत

भावस्त्री वेदी व भावनपुंसक वेदी मुनि बन सकते हैं न कि द्रव्य स्त्रीवेदी, द्रव्य नपुंसकवेदी

पुनः मानुषीषु शेषगुणस्थानव्यवस्थानिरूपणार्थं सूत्रावतारः क्रियते श्रीपुष्पदन्तभट्टारकेण—

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजद-संजद-ट्ठाणे[१५] **णियमा पज्जत्तियाओ।।९३।।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**स्त्रीवेदविशिष्टमानुष्यः सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयत-सम्यग्दृष्टि-संयतासंयत-संयतगुणस्थानेषु नियमात् पर्याप्तिकाः एव भवन्ति।**

हुण्डावसर्पिण्यां स्त्रीषु सम्यग्दृष्टयः किन्नोत्पद्यन्ते इति चेत् ?

नोत्पद्यन्ते।

कुतोऽवसीयते ?

अस्मादेवार्षात्।

अस्मादेवार्षात् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्ध्येदिति चेत् ?

न, सवासस्त्वादप्रत्याख्यानगुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः।

भावसंयमस्तासां सवाससामप्यविरुद्ध इति चेत् ?

न तासां भावसंयमोऽस्ति, भावासंयमाविनाभाविवस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्तेः।

कथं पुनस्तासु चतुर्दश गुणस्थानानीति चेत् ?

न, भावस्त्रीविशिष्टमनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात्।

भाववेदो बादरकषायान्नोपर्यस्तीति न तत्र चतुर्दशगुणस्थानानां संभव इति चेत् ?

न, अत्र वेदस्य प्राधान्याभावात्। गतिस्तु प्रधाना, न साराद्विनश्यति। वेदविशेषणायां गतौ न तानि संभवन्तीति चेत् ?

न, विनष्टेऽपि विशेषणे उपचारेण तद्व्यपदेशमादधानमनुष्यगतौ तत्सत्त्वाविरोधात्। मनुष्यापर्याप्तेष्व-पर्याप्तिप्रतिपक्षाभावतः सुगमत्वान्न तत्र वक्तव्यमस्ति।"[१६] **एवं श्रीवीरसेनाचार्येण धवलाटीकायां स्पष्टतया कथितं नात्र संदेहः कर्तव्यः।**

अत्रायमर्थः—द्रव्यपुरुषवेदी कश्चिद् जीवः भावस्त्रीवेदेन चतुर्दशगुणस्थानानि लभते।

श्रीकुंदकुंददेवेनापि सिद्धभक्तौ प्रोक्तं—

पुंवेदं वेदंता जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा।
सेसोदयेण वि तहा झाणुवजुत्ता य ते हु सिज्झंति।।[१७]

एषा वेदविषमता तिर्यग्गतौ मनुष्यगतौ चैव न देवनारकाणामिति, न च भोगभूमिषु। एतदेव प्रोक्तं श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्त्तिना—

पुरुसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरुसित्थिसंढवो भावे।
णामोदयेण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा।।२७१।।

पुरुषस्त्रीषण्ढाख्यत्रिवेदानां चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतीनामुदयेन भावे-चित्परिणामे यथासंख्यं पुरुषः स्त्री षण्ढश्च जीवो भवति। निर्माणनामकर्मोदययुक्ता-ङ्गोपाङ्गनामकर्मविशेषोदयेन, द्रव्ये पुद्गलद्रव्यपर्यायविशेषे पुरुषः स्त्री षण्ढश्च भवति। तद्यथा—पुंवेदोदयेन स्त्रियां अभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रान्तो जीवो भावपुरुषो भवति। स्त्रीवेदोदयेन पुरुषाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रान्तो जीवो भावस्त्री भवति। नपुंसक-वेदोदयेन उभयाभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रान्तो जीवो भावनपुंसकं भवति। पुंवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदय-युक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयवशेन श्मश्रुकूर्च्चशिश्ना-दिलिङ्गाङ्कितशरीरविशिष्टो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यन्तं द्रव्यपुरुषो भवति। स्त्रीवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदययुक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयेन निर्लोममुखस्तनयोन्यादिलिङ्गलक्षितशरीरयुक्तो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यन्तं द्रव्यस्त्री भवति। नपुंसकवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदय-युक्ताङ्गोपाङ्गनामकर्मोदयेन उभयलिङ्गव्यतिरिक्तदेहाङ्कितो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यन्तं द्रव्यनपुंसकं जीवो भवति। एते द्रव्यभाववेदाः प्रायेण-प्रचुरवृत्त्या देवनारकेषु भोगभूमिसर्वतिर्यग्मनुष्येषु च समाः द्रव्यभावाभ्यां समवेदोदयाङ्किता भवन्ति। क्वचित् कर्मभूमिमनुष्यतिर्यग्गतिद्वये विषमाः—विसदृशा अपि भवन्ति। तद्यथा—द्रव्यतः पुरुषे भावपुरुषः भावस्त्री भावनपुंसकं इति विषमत्वं द्रव्यभावयोरनियमः कथितः। कुतः ? द्रव्यपुरुषस्य क्षपकश्रेण्या-रूढानिवृत्ति-करणसवेदभागपर्यन्तं वेदत्रयस्य परमागमे ''सेसोदयेण वि तहा झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति।'' इति प्रतिपादितत्वेन संभवात्।।

अस्यायमर्थः—मनुष्याः कर्मभूमिजाः द्रव्येण पुरुषाः अपि यदि भावेन स्त्रीवेदिनः नपुंसकवेदिनो वा तर्हि अपि मोक्षं प्राप्नुवन्ति।

पुनः मनुष्यिनियों में शेष गुणस्थानों की व्यवस्था का निरूपण करने हेतु श्रीपुष्पदंतभट्टारक के द्वारा सूत्र का अवतार किया जाता है—

सूत्रार्थ—

मनुष्यिनियाँ सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और संयत गुणस्थानों में नियम से पर्याप्तक होती हैं।।९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्त्रीवेदी मनुष्यिनियाँ तृतीय, चतुर्थ, पंचम और छठे आदि गुणस्थानों में नियम से पर्याप्तक होती हैं।

शंका—हुण्डावसर्पिणी काल के दोष से स्त्रियों में सम्यग्दृष्टि जीव क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं ?

समाधान—उनमें सम्यग्दृष्टि जीव नहीं उत्पन्न होते हैं।

शंका—यह किस प्रमाण से जाना जाता है ?

समाधान—इसी आर्षवचन से जाना जाता है।

शंका—तो इसी आर्षवचन से द्रव्य स्त्रियों का मुक्ति जाना भी सिद्ध हो जाएगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वस्त्र सहित होने से उनके संयतासंयत गुणस्थान होता है अतएव उनके संयम की उत्पत्ति नहीं हो सकती है।

शंका—वस्त्र सहित होते हुए भी उन द्रव्य स्त्रियों के भाव संयम के होने में कोई विरोध नहीं होना चाहिए ?

समाधान—उनके भावसंयम नहीं है क्योंकि अन्यथा अर्थात् भावसंयम के मानने पर उनके भाव असंयम का अविनाभावी वस्त्रादिक का ग्रहण करना नहीं बन सकता है।

शंका—तो फिर स्त्रियों में चौदह गुणस्थान होते हैं यह कथन कैसे बनेगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि भावस्त्री अर्थात् स्त्रीवेदयुक्त मनुष्यगति में चौदहों गुणस्थानों के सद्भाव मान लेने में कोई विरोध नहीं आता है।

शंका—बादरकषाय गुणस्थान के ऊपर भाववेद नहीं पाया जाता है इसलिए भाववेद में चौदह गुणस्थानों का सद्भाव नहीं हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यहाँ पर अर्थात् गतिमार्गणा में वेद की प्रधानता नहीं है, किन्तु गति प्रधान है और वह पहले नष्ट नहीं होती है।

शंका—यद्यपि मनुष्यगति में चौदह गुणस्थान हो सकते हैं फिर भी उसे वेद विशेषण से युक्त कर देने पर उसमें चौदह गुणस्थान संभव नहीं हो सकते हैं ऐसा क्यों ?

समाधान—नहीं, क्योंकि विशेषण के नष्ट हो जाने पर भी उपचार से उस विशेषण युक्त संज्ञा को धारण करने वाली मनुष्यगति में चौदह गुणस्थानों का सद्भाव होने में कोई विरोध नहीं आता है। मनुष्य अपर्याप्तकों में अपर्याप्ति का कोई प्रतिपक्षी नहीं होने से और उनका कथन सुगम होने से इस विषय में कुछ अधिक कहने योग्य नहीं है। इसलिए इस

संबंध में स्वतन्त्ररूप से नहीं कहा गया है। ऐसा श्रीवीरसेनाचार्य ने धवला टीका में स्पष्टरूप से कह दिया है अतः इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिए।

यहाँ अभिप्राय यह है कि द्रव्य पुरुषवेदी कोई कर्मभूमियाँ मनुष्य भाव से स्त्रीवेद के द्वारा भी चौदहों गुणस्थानों को प्राप्त करते हैं।

श्रीकुन्दकुन्ददेव ने भी सिद्धभक्ति में कहा है—

गाथार्थ—जो पुरुष द्रव्य से पुरुषवेद के द्वारा क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ हैं, वे ही द्रव्यपुरुषवेदी भाव से स्त्री या नपुंसकवेदी होते हुए भी शुक्लध्यान के द्वारा सिद्ध पद को प्राप्त करते हैं।

इसी भाव को सिद्धभक्ति के पद्यानुवाद में लिया है—

जो भाव पुरुषवेदी मुनिवर वर क्षपकश्रेणि चढ़ सिद्ध हुए।
जो भाव नपुंसकवेदी भी थे पुरुषध्यान धर सिद्ध हुए।।
जो भाववेद स्त्री होकर भी द्रव्यपुरुष अतएव उन्हें।
हो शुक्लध्यान सिद्धि जिससे सब कर्म नाश कर सिद्ध बनें।।

यह वेद की विषमता तिर्यंचगति और मनुष्यगति में ही है, देव और नारकियों में नहीं है और भोगभूमि में भी नहीं है। श्री नेमिचंद्रसिद्धान्तचक्रवर्ती ने भी यही बात कही है—

गाथार्थ—पुरुष, स्त्री और नपुंसकवेद कर्म के उदय से भावपुरुष, भावस्त्री, भावनपुंसक होता है और नामकर्म के उदय से द्रव्यपुरुष, द्रव्यस्त्री, द्रव्यनपुंसक होता है। सो यह भाववेद और द्रव्यवेद प्रायः करके समान होता है परन्तु कहीं-कहीं विषम भी होता है।।२७१।।

चारित्रमोहनीय का भेद नोकषाय की पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद नामक प्रकृतियों का उदय होने पर जीवभाव अर्थात् चित्परिणाम में पुरुष, स्त्री या नपुंसक होता है। निर्माण नामकर्म के उदय से युक्त आंगोपांगनामकर्म विशेष के उदय से द्रव्य अर्थात् पुद्गलद्रव्य की पर्यायविशेष में पुरुष, स्त्री और नपुंसक होता है। वह इस प्रकार जानना कि पुरुषवेद के उदय से स्त्री में अभिलाषा रूप मैथुन संज्ञा से आक्रान्त जीव भावपुरुष होता है। स्त्रीवेद के उदय से पुरुष की अभिलाषारूप मैथुन संज्ञा से आक्रान्त जीव भावस्त्री होता है। नपुंसकवेद के उदय से स्त्री और पुरुष दोनों की अभिलाषा रूप मैथुन से आक्रान्त जीव भावनपुंसक होता है। पुरुषवेद के उदय से तथा निर्माणनामकर्म के उदय से युक्त आंगोपांग नामकर्म के उदयवश दाढ़ी, मूँछ, शिश्न आदि चिन्हों से अंकित शरीर से विशिष्ट जीव भव के प्रथम समय से लेकर उस भव के अंतिम समय पर्यन्त द्रव्यपुरुष होता है। स्त्रीवेद के उदय से तथा निर्माण नामकर्म के उदय से युक्त आंगोपांग नामकर्म के उदय से रोमरहित मुख, स्तन, योनि आदि चिन्हों से युक्त शरीर वाला जीव भव के प्रथम समय से लेकर उस भव के अंतिम

समय पर्यन्त द्रव्यस्त्री होता है। नपुंसकवेद के उदय से तथा निर्माण नामकर्म के उदय से युक्त आंगोपांग नामकर्म के उदय से दोनों लिंगों से भिन्न शरीर वाला जीव भव के प्रथम समय से लेकर उस भव के अंतिम समय पर्यन्त द्रव्यनपुंसक होता है। ये द्रव्यवेद और भाववेद प्रायः देव, नारकियों और भोगभूमि के सब तिर्यंचों तथा मनुष्यों में सम होते हैं किन्तु क्वचित् तिर्यंचगति और मनुष्यगति में विषम होते हैं। जैसे—द्रव्य से पुरुष भाव से पुरुष, स्त्री या नपुंसक होता है। द्रव्य से स्त्री भाव से पुरुष, स्त्री या नपुंसक होता है। द्रव्य से नपुंसक भाव से पुरुष, स्त्री या नपुंसक होता है। इस प्रकार द्रव्य और भाव का अनियम विषम शब्द से कहा है क्योंकि क्षपक श्रेणी पर आरूढ़ जीव के अनिवृत्तिकरण से सवेद भागपर्यन्त तीनों वेदों का अस्तित्व परमागम में कहा है। शेष वेदों के उदय से भी ध्यान में मग्न जीव मुक्ति प्राप्त करते हैं।

इसका अर्थ यह है कि कर्मभूमिज मनुष्य आदि द्रव्य से पुरुषवेदी होते हुए भी भाव से स्त्रीवेदी अथवा नपुंसकवेदी भी हैं तो भी मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. १, पृ. २८७ से २९०)

जिनेन्द्र प्रतिमा के दर्शन का महत्व

जिनेन्द्रदेव की प्रतिमा के दर्शन की भावना करते ही दो उपवास का फल मिल जाता है। चलने की अभिलाषा करते ही तीन उपवास का फल, चलने का आरंभ करते ही चार उपवास का फल, चलते-चलते पाँच उपवास का फल, कुछ दूर चले आने पर बारह उपवास का फल, बीच मार्ग में पहुँच जाने पर पन्द्रह उपवास का फल, मंदिर के शिखर का दर्शन करते ही एक मास के उपवास का फल, मंदिर में प्रवेश करने पर छह मास के उपवास का फल, मंदिर के द्वार में प्रवेश करने पर एक वर्ष के उपवास का फल, तीन प्रदक्षिणा देने पर सौ वर्ष के उपवास का फल, जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा के दर्शन करने से हजार वर्ष के उपवास का फल मिलता है। पुनः जिनप्रतिमा के सन्मुख खड़े होकर भावपूर्वक स्तुति करने से अनंत उपवास का फल प्राप्त होता है। यथार्थ में जिनेन्द्र भगवान की भक्ति से बढ़कर और कोई उत्तम पुण्य नहीं है।

—पद्मपुराण, पर्व 32, पृ. 99

षट्खण्डागम पुस्तक-२

(सिद्धान्तचिंतामणि टीका से)

मंगलाचरणम्

सिद्धिकन्याविवाहार्थं, त्यक्त्वा राजीमतीं सतीम्।
दीक्षां लेभे महायोगिन्! नेमिनाथ! नमोऽस्तु ते।।१।।

श्लोकार्थ—सिद्धि कन्या से विवाह करने हेतु जिन्होंने सती राजमती का त्याग करके जैनेश्वरी-मुनिदीक्षा धारण की थी ऐसे हे महायोगिराज! नेमिनाथ भगवन्! आपको मेरा नमस्कार होवे।।१।।

८. सिद्धान्त नवनीत

सम्यग्दृष्टि देव के मरण समय संक्लेश नहीं होता

सम्यग्दृष्टिजीवानां बुद्धिस्थितपरमेष्ठिनां मिथ्यादृष्टिजीवानामिव मरणकाले संक्लेशाभावात्।

उक्तं च श्रीवीरसेनाचार्येण धवलाटीकायां-

''सम्माइट्ठीणं बुद्धिट्ठियपरमेट्ठीणं मिच्छाइट्ठीणं मरणकाले संकिलेसाभावादो[९८]।''

शंका—तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले सम्यग्दृष्टि देव अन्तर्मुहूर्त तक अपनी पहली लेश्याओं को नहीं छोड़ते हैं, इसका क्या कारण है ?

समाधान—इसका कारण यह है कि बुद्धि में स्थित है परमेष्ठी जिनके अर्थात् परमेष्ठी के स्वरूप चिन्तवन में जिनकी बुद्धि लगी हुई है ऐसे सम्यग्दृष्टि देवों के मरण काल में मिथ्यादृष्टि देवों के समान संक्लेश नहीं पाया जाता है। इसलिए अपर्याप्तकाल में उनकी पहले की शुभलेश्याएं ज्यों की त्यों बनी रहती हैं।

श्रीवीरसेनाचार्य ने धवलाटीका में कहा भी है—

"मरण के समय मिथ्यादृष्टियों को जिस प्रकार संक्लेश होता है उसी प्रकार जिनकी बुद्धि में परमेष्ठी स्थित हैं उन सम्यग्दृष्टि देवों को मरण के समय संक्लेश नहीं होता है।"

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. २, पृ. २०९)

९. सिद्धान्त नवनीत

द्रव्यस्त्री वेदी के पूर्ण संयम नहीं है, भावस्त्री वेदी के चौदह गुणस्थान हैं।

मनुष्यिनीनां भण्यमाने सन्ति चतुर्दश गुणस्थानानि, द्वौ जीवसमासौ, षट् पर्याप्तयः, षडपर्याप्तयः, दश प्राणाः सप्त प्राणाः, चतस्त्रः संज्ञाः, क्षीणसंज्ञा अपि अस्ति, मनुष्यगतिः, पञ्चेन्द्रियजातिः, त्रसकायः, एकादश योगाः अयोगोऽप्यस्ति, अत्र आहार-आहारमिश्रकाययोगौ नस्तः।

किं कारणम् ? येषां भावः स्त्रीवेदो द्रव्यं पुनः पुरुषवेदः, तेऽपि जीवाः संयमं प्रतिपद्यन्ते। द्रव्यस्त्रीवेदाः संयमं न प्रतिपद्यन्ते सचेलत्वात्। भावस्त्रीवेदानां द्रव्येण पुंवेदानामपि संयतानां नाहारर्द्धिः समुत्पद्यते द्रव्यभावाभ्यां पुरुषवेदानामेव समुत्पद्यते तेन स्त्रीवेदेऽपि निरुद्धे आहारद्विकं नास्ति, ततः कारणात् एकादशयोगाः भणिताः।

स्त्रीवेदोऽपगतवेदोऽप्यस्ति, अत्र भाववेदेन प्रयोजनं न च द्रव्यवेदेन।

किं कारणम् ?

'अवगदवेदो वि अत्थि' इति वचनात्। चत्वारः कषायाः, अकषायोऽप्यस्ति, मनःपर्ययज्ञानेन विना सप्त ज्ञानानि, परिहारसंयमेन विना षट् संयमाः, चत्वारि दर्शनानि, द्रव्यभावाभ्यां षड्लेश्याः अलेश्याप्यस्ति, भव्यसिद्धिका अभव्यसिद्धिकाः, षट् सम्यक्त्वानि, संज्ञिन्यः, नैव संज्ञिन्यः नैवासंज्ञिन्योऽपि सन्ति, आहारिण्योऽनाहारिण्यः, साकारोपयुक्ता भवन्त्यनाकारोप-युक्ता वा साकारानाकाराभ्यां युगपदुपयुक्ता वा[*११४]।

अब स्त्रीवेदी मनुष्यों (मनुष्यिनी) के आलाप कहे जाते हैं—

उनके चौदहों गुणस्थान होते हैं, दो जीवसमास (संज्ञी पर्याप्त और असंज्ञी पर्याप्त), छहों पर्याप्तियाँ-छहों अपर्याप्तियाँ , दशों प्राण-सात प्राण, चारों संज्ञाएं तथा क्षीणसंज्ञास्थान भी है। मनुष्यगति, पञ्चेन्द्रियजाति, त्रसकाय, ग्यारह योग (चारों मनोयोग, चारों वचनयोग, औदारिक- काययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग) तथा अयोगस्थान भी है। इन मनुष्यिनियों के आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग ये दो योग नहीं होते हैं।

शंका—स्त्रीवेदी मनुष्यों में आहारककाययोग और आहारकमिश्रकाययोग नहीं होने का कारण क्या है ?

समाधान—भाव से जिनके स्त्रीवेद होता है और द्रव्य से पुरुषवेद होता है, वे जीव भी संयम को प्राप्त होते हैं किन्तु द्रव्य से स्त्रीवेद वाले जीव पूर्ण संयम को धारण नहीं करते हैं क्योंकि वे सचेल—वस्त्रसहित होते हैं। भावस्त्रीवेदी कोई जीव द्रव्य से यदि पुरुषवेदी भी हैं तो उन संयमियों के आहारकऋद्धि नहीं उत्पन्न होती है किन्तु द्रव्य और भाव दोनों से जो पुरुषवेदी ही होते हैं उनके आहारकऋद्धि उत्पन्न होती है, इसलिए स्त्रीवेद वाले मनुष्यों के आहारकद्विक के बिना ग्यारह योग कहे गये हैं।

योग आलाप के आगे स्त्रीवेद तथा अपगत वेदस्थान भी होता है। यहाँ भाववेद से प्रयोजन है, द्रव्यवेद से नहीं।

प्रश्न—ऐसा किस कारण है ?

उत्तर—आगम में अपगतवेद भी होने का वचन आया है। यदि केवल द्रव्यवेद का ही कथन किया जाता तो अपगतवेदस्थान नहीं बन सकता था, क्योंकि द्रव्यवेद चौदहवें गुणस्थान के अंत तक होता है परन्तु "अपगतवेद भी होता है" इस प्रकार का वचन निर्देश नवमें गुणस्थान के अवेदभाग से किया गया है, जिससे प्रतीत होता है कि यहाँ भाववेद से ही प्रयोजन है, द्रव्यवेद से नहीं।

वेद आलाप के आगे चारों कषाय तथा अकषायस्थान भी होता है। मनःपर्यय ज्ञान के बिना सात ज्ञान, परिहार विशुद्धि संयम के बिना छह संयम, चारों दर्शन, द्रव्य और भाव से छहों लेश्याएं तथा अलेश्यास्थान भी होता है। भव्यसिद्धिक, अभव्यसिद्धिक, छहों सम्यक्त्व, संज्ञिनी और असंज्ञिनी इन दोनों विकल्पों से रहित स्थान भी होता है। आहारिणी, अनाहारिणी, साकारोपयोगिनी, अनाकारोपयोगिनी तथा साकार और अनाकार दोनों उपयोगों से युगपत् भी होती हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. २, पृ. ९५ से ९६-९७)

१०. सिद्धान्त नवनीत

घनोदधि वातवलय में जल का वर्ण धवल है।

अप्कायिकानां पृथिवीकायिकवद् भंगः। विशेषेण सामान्यालापे भण्यमाने पृथिवीकायिकस्थाने अप्कायिको वक्तव्यः, द्रव्येण अपर्याप्तकाले कापोतशुक्ललेश्ये पर्याप्तकाले स्फटिकवर्णलेश्या वक्तव्या[*२२०]**।**

तेषामेव सूक्ष्माप्कायिकानां पर्याप्तकाले द्रव्येण कापोतलेश्या तथा च बादराप्कायिकानां द्रव्येण पर्याप्तकाले स्फटिकवर्णशुक्ललेश्या कथयितव्या[*२२१]**।**

कुत एतत् ?

घनोदधि-घनवलय-आकाशपतितपानीयानां धवलवर्णदर्शनात्।

अत्र केचिदाचार्या वदन्ति—धवल-कृष्ण-नील-पीत-रक्त-आताम्र-वर्णपानीयदर्शनात् न धवलवर्णमेव पानीयमिति चेत् ?

तन्न घटते, आकारसद्भावे मृत्तिकायाः संयोगेन जलस्य बहुवर्णव्यवहार-दर्शनात्। अपां स्वभाववर्णः पुनो धवलश्चैव।[१९]

अप्कायिक जीवों के आलाप पृथिवीकायिक जीवों के समान ही समझना चाहिए। विशेष बात यह है कि उनके सामान्य आलाप कहते समय 'पृथ्वीकायिक' के स्थान पर 'अप्कायिक' कहना चाहिए और लेश्या के प्रकरण में द्रव्य से अपर्याप्तकाल में कापोत और शुक्ललेश्या और पर्याप्तकाल में स्फटिक वर्ण वाली अर्थात् शुक्ललेश्या कहना चाहिए।

उन्हीं सूक्ष्म अप्कायिक जीवों के पर्याप्तकाल में द्रव्य से कापोत लेश्या कहना चाहिए तथा बादर अप्कायिक जीवों के द्रव्य से पर्याप्तकाल में स्फटिकवर्णवाली शुक्ल लेश्या कहनी चाहिए।

प्रश्न—ऐसा क्यों ?

उत्तर—क्योंकि घनोदधिवात और घनवलयवात द्वारा आकाश से गिरे हुए पानी का धवलवर्ण देखा जाता है।

यहाँ पर कुछ आचार्य कहते हैं कि धवल, कृष्ण, नील, पीत, रक्त, आताम्रवर्ण का पानी देखा जाने से पानी धवलवर्ण ही होता है ऐसा कहना भी नहीं बनता है ?

परन्तु उनका यह कथन ठीक से घटित नहीं होता है क्योंकि आधार के होने पर मिट्टी के संयोग से जल अनेक वर्ण वाला हो जाता है ऐसा व्यवहार देखा जाता है किन्तु जल का स्वाभाविक वर्ण धवल ही है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. २, पृ. ६०९-६१०)

११. सिद्धान्त नवनीत

आहारकशरीर, मनःपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धि व उपशम-सम्यक्त्व ये एक साथ नहीं होते हैं

किं कारणम् ?

अप्रशस्तवेदाभ्यां सह आहारर्द्धिर्न उत्पद्यते।

चत्वारः कषायाः, त्रीणि ज्ञानानि, मनःपर्ययज्ञानं नास्ति। किञ्च, आहारमनः-पर्ययज्ञानयोः सहानवस्थानलक्षणविरोधात्।

द्वौ संयमौ, परिहारशुद्धिसंयमो नास्ति, एतेनापि सह आहारशरीरस्य विरोधात्। त्रीणि दर्शनानि, द्रव्येण शुक्ललेश्या, भावेन तेजःपद्मशुक्ललेश्याः, भव्यसिद्धिकाः, द्वे सम्यक्त्वे, उपशमसम्यक्त्वं नास्ति, एतेनापि सह विरोधात्।

प्रश्न—आहारककाययोगी जीवों के उपर्युक्त दोनों वेदों के (स्त्रीवेद व नपुंसक वेदों के) नहीं होने का क्या कारण है?

उत्तर—क्योंकि अप्रशस्त वेदों के साथ आहारक ऋद्धि नहीं उत्पन्न होती है।

वेद आलाप के आगे चारों कषाय, आदि के तीन ज्ञान होते हैं। उनके मनःपर्ययज्ञान नहीं होता है क्योंकि आहारकऋद्धि और मनःपर्ययज्ञान का सहानवस्थानलक्षण विरोध है अर्थात् ये दोनों एक साथ एक जीव में नहीं रहते हैं।

पुनः उनके दो संयम (सामायिक और छेदोपस्थापना) होते हैं, किन्तु परिहारविशुद्धि संयम नहीं होता है क्योंकि इसके साथ भी आहारकशरीर का विरोध है।

संयम आलाप के आगे तीनों दर्शन (आदि के), द्रव्य से शुक्ललेश्या तथा भाव से पीत, पद्म, शुक्ल ये तीन लेश्याएं, भव्यत्व, दो सम्यक्त्व (क्षायिक, क्षायोपशमिक) होते हैं परन्तु उनके उपशम सम्यक्त्व नहीं होता है क्योंकि इसके साथ भी आहारक शरीर का विरोध है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. २, पृ. २१५-२१६)

१२. सिद्धान्त नवनीत

कदाचित् मनःपर्ययज्ञान के साथ औपशमिक सम्यक्त्व संभव है

मनःपर्ययज्ञानिनां औपशमिकसम्यक्त्वं कथं संभवति ?

यः कश्चित् वेदकसम्यक्त्वानन्तरं द्वितीयसम्यक्त्वं प्राप्नोति, तस्य सम्यक्त्वस्य प्रथमसमयेऽपि मनःपर्ययज्ञानोपलंभात्। तथा मिथ्यात्वानन्तरं उपशमसम्यग्दृष्टौ मनःपर्ययज्ञानं नोपलभ्यते, मिथ्यात्व पश्चादुत्कृष्टोपशमसम्यक्त्वकालादपि गृहीतसंयमप्रथमसमयात् सर्वजघन्यमनःपर्ययज्ञानोत्पादनसंयमकालस्य बहुत्वोपलंभात्।

मनःपर्ययज्ञानेन सह उपशमश्रेण्याः अवतीर्य प्रमत्तगुणस्थानं प्रतिपन्नस्य उपशमसम्यक्त्वेन सह मनःपर्ययज्ञानं लभ्यते, किन्तु मिथ्यात्वपश्चादागत-उपशमसम्यग्दृष्टिप्रमत्तसंयतस्य मनःपर्ययज्ञानं नोत्पद्यते, तत्रोत्पत्तिसंभवाभावात्[२०]।

प्रश्न—मनःपर्ययज्ञानी जीवों के औपशमिक सम्यक्त्व कैसे संभव हो सकता है ?

उत्तर—इसका समाधान यह है कि जो कोई मनुष्य वेदक सम्यक्त्व के अनंतर द्वितीय सम्यक्त्व को प्राप्त करता है उनके सम्यक्त्वप्राप्ति के प्रथम समय में भी मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तथा मिथ्यात्व के पश्चात् उपशमसम्यग्दृष्टि जीव में मनःपर्ययज्ञान नहीं हो सकता है। मिथ्यात्व के पश्चात् उत्पन्न हुए उत्कृष्ट उपशमसम्यक्त्वकाल से भी ग्रहण किया गया संयम प्रथम समय से सर्वजघन्य मनःपर्ययज्ञान के उत्पादन में संयमकाल का बहुत्व देखा जाता है।

उपशमसम्यग्दृष्टि के मनःपर्ययज्ञान होता है इसका कारण यह है कि मनःपर्ययज्ञान के साथ उपशमश्रेणी से उतरकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान को प्राप्त हुए जीव के औपशमिकसम्यक्त्व के साथ मनःपर्ययज्ञान पाया जाता है। किन्तु मिथ्यात्व से पीछे आए हुए उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत जीव के मनःपर्ययज्ञान नहीं पाया जाता है, क्योंकि प्रथमोपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयत के मनःपर्ययज्ञान की उत्पत्ति संभव नहीं है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. २, पृ. २५३, ३१५)

धर्म एक सर्वश्रेष्ठ समुद्र है

चारुगुणसलिलपउरं संजमउत्तुंगउम्मिसंघायं।
णिम्मलतवपायालं समिदि महामच्छ संछण्ण।।
जमणियमदीवपउरं वरगुत्तिगंभीर सीलमज्जादं।
णिव्वाणरयणणिवहं धम्मसमुद्दं णमंसामि।।

अर्थ—सुन्दर गुणोंरूप जल की प्रचुरता से संयुक्त, संयमरूप उन्नत ऊर्मि समूहों से सहित, निर्मल तपरूप पातालों से परिपूर्ण, समितियोंरूपी महामत्स्यों से व्याप्त, यम-नियमरूप प्रचुर द्वीपों (जलजन्तु विशेषों) से संयुक्त, श्रेष्ठ गुप्तियों एवं गंभीर शीलरूप मर्यादा से सहित और निर्वाणरूप रत्नसमूह से सम्पन्न ऐसे धर्मरूप समुद्र को मैं नमस्कार करता हूँ।

—जम्बूद्वीपपण्णत्ति-आचार्य पद्मनंदि

षट्खण्डागम पुस्तक-३

(सिद्धान्तचिंतामणि टीका से)

मंगलाचरणम्

अनन्तानन्तमाना ये, सिद्धास्तेभ्यो नमो नमः।
द्रव्यप्रमाणज्ञानार्थ-मेतं ग्रन्थमपि स्तुमः।।१।।

श्लोकार्थ— अनंतानंत प्रमाण जो सिद्ध भगवान हैं उनको मेरा बारम्बार नमस्कार होवे। अपने संख्याज्ञान-द्रव्यप्रमाणानुगम ज्ञान की वृद्धि के लिए इस ग्रंथ की भी हम स्तुति करते हैं।

१३. सिद्धान्त नवनीत

संयत मुनियों की उत्कृष्ट संख्या

इस प्रकार प्रमत्तसंयत नामक छठे गुणस्थान से लेकर अयोगीजिन (चौदहवें गुणस्थान)पर्यन्त तीन कम नौ करोड़ मुनियों की संख्या हो जाती है।

धवला टीका में श्री वीरसेन स्वामी ने कहा है—

" इस प्रकार प्ररूपण की गई सम्पूर्ण संयत जीवों की राशि को एकत्रित करने पर कुल संख्या आठ करोड़ निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ सत्तानवे (८९९९९९९७)होती है।"

अन्यत्र ग्रंथ में भी इसी प्रकार का कथन आया है—

गाथार्थ— सात का अंक आदि में और अंत में आठ का अंक लिखकर दोनों के मध्य में छह बार नौ के अंक लिखने पर ८९९९९९९७ तीन कम नौ करोड़ संख्याप्रमाण सब संयमियों को मैं हाथों की अंजलि मस्तक से लगाकर मन-वचन-काय की शुद्धि से नमस्कार करता हूँ।

उसी का स्पष्टीकरण करते हैं —

प्रमत्तसंयत मुनियों की संख्या पांच करोड़ तिरानवे लाख अट्ठानवे हजार दो सौ छह (५९३९८२०६) है।

अप्रमत्तसंयत मुनियों की संख्या दो करोड़ छियानवे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन (२९६९९१०३) है।

चार गुणस्थानवर्ती (आठवें,नवमें,दशवें और ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती) उपशामक मुनि ग्यारह सौ छियानवे (११९६) होते हैं तथा क्षपक श्रेणी सम्बन्धी चार गुणस्थानवर्ती और अयोगकेवली जीवों की संख्या दश कम तीन हजार (२९९०) है। तेरहवें गुणस्थानवर्ती

सयोगकेवली जीव आठ लाख अट्ठानवे हजार पाँच सौ दो (८९८५०२) प्रमाण हैं। इस प्रकार यह सम्पूर्ण संख्या मिलकर आठ करोड़ निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ सत्तानवे अर्थात् तीन कम नौ करोड़ प्रमाण हो जाती है और ये सभी प्रमत्तसंयत से लेकर अयोगकेवलीजिनपर्यन्त संयत—मुनि की संज्ञा से जाने जाते हैं। एक समय में एक सौ सत्तर कर्मभूमियों में होने वाले संयत इतनी संख्याप्रमाण होते हैं, ऐसी दक्षिणप्रतिपत्ति है।

उपर्युक्त गाथाओं का कथन उचित नहीं है, ऐसा कोई आचार्य युक्ति के बल से बताते हैं। वह कौन सी युक्ति है ? उसे कहते हैं—

सभी तीर्थंकरों की अपेक्षा पद्मप्रभ भट्टारक(भगवान)का शिष्य परिवार सबसे अधिक—तीन लाख तीस हजार संख्याप्रमाण है। यह संख्या एक सौ उत्तर से गुणित करने पर पांच करोड़ इकसठ लाख संयतों की संख्या होती है परन्तु यह संख्या पूर्वकथित संयतों की संख्याप्रमाण नहीं प्राप्त होती है। इसलिए पूर्वकथित प्रमाण उचित नहीं है ऐसा कहने पर उसका समाधन किया जाता है—

समस्त अवसर्पिणी कालों की अपेक्षा वर्तमान काल में यह हुण्डावसर्पिणी काल चल रहा है इसलिए युग के माहात्म्य से घटकर ह्रस्वभाव को प्राप्त हुए हुण्डावसर्पिणी कालसम्बन्धी तीर्थंकरों के शिष्यपरिवार को ग्रहण करके गाथासूत्र को दूषित करना शक्य नहीं है, क्योंकि शेष अवसर्पिणियों के तीर्थंकरों के बड़ा शिष्यपरिवार पाया जाता है। अन्य और भी कथन है कि भरत और ऐरावत क्षेत्र में मुनष्यों की अधिक संख्या नहीं पाई जाती है जिससे उन दोनों क्षेत्रसम्बन्धी एक तीर्थंकर के संघ के प्रमाण से विदेहक्षेत्रसम्बन्धी एक तीर्थंकर का संघ समान माना जाय किन्तु भरत और ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यों से विदेहक्षेत्र के मनुष्यों की संख्या संख्यातगुणी अधिक है।

अन्तर्द्वीपों के मनुष्य सबसे थोड़े हैं। उत्तरकुरु और देवकुरु के मनुष्य उनसे संख्यातगुणे हैं। हरि और रम्यक् क्षेत्रों के मनुष्य उत्तरकुरु और देवकुरु के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रों के मनुष्य हरि और रम्यक् के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्रों के मनुष्य हरि और रम्यक् के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं। विदेह क्षेत्र के मनुष्य भरत और ऐरावत के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं।

बहुत मनुष्यों में क्योंकि संयत बहुत ही होंगे, इसीलिए इस क्षेत्रसम्बन्धी संयतों के प्रमाण को प्रधान करके जो दूषण कहा गया है, वह दूषण प्राप्त नहीं हो सकता है क्योंकि इस कथन का इसी अल्पबहुत्व के साथ विरोध आता है।

अब आचार्य श्री वीरसेन स्वामी उत्तरप्रतिपत्ति का दिग्दर्शन कराते हैं—

उत्तर प्रतिपत्ति-मान्यता के अनुसार प्रमत्तसंयतों का प्रमाण चार करोड़ छयासठ लाख छयासठ हजार छह सौ चौंसठ (४६६६६६६४) है।

अप्रमत्तसंयतों का प्रमाण दो करोड़ सत्ताइस लाख निन्यानवे हजार चार सौ अट्ठानवे (२२७९९४९८)है।

उपशामक, क्षपक और अयोगकेवली महामुनियों की संख्या पूर्वोक्त ही है तथा उपशामक संयतों की संख्या ग्यारह सौ छियानवे (११९६)है।

क्षपक संयतों एवं अयोगकेवली जिन संयतों की संख्या दो हजार नौ सौ नब्बे प्रमाण (२९९०) है तथा सयोगकेवली संयतों की संख्या का प्ररूपण करने वाली गाथा निम्न प्रकार है—

गाथार्थ—तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगकेवली जिनों की संख्या पाँच लाख उनतीस हजार छह सौ अड़तालीस है।

इन सभी संयतों की संख्या एकत्रित करने पर एक सौ सत्तर कर्मभूमिगत जो सम्पूर्ण ऋषि होते हैं, उन सबका प्रमाण छह करोड़ निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ छियानवे (६९९९९९९६) है।

यहाँ श्रीवीरसेनाचार्य ने दक्षिण और उत्तर इन दोनों प्रतिपत्तियों के द्वारा दो मतों का व्याख्यान किया है। उन दोनों मतों को भी पूर्वाचार्यों द्वारा निरूपित गाथाओं का उद्धरण दे देकरके ही किया है पुनः धवला टीकाकार के द्वारा दक्षिणप्रतिपत्ति का व्याख्यान प्रवाह्यमान आचार्यपरम्परागत है तथा उत्तरप्रतिपत्ति का व्याख्यान प्रवाहरूप से नहीं आ रहा है तथा आचार्यपरम्परा से अनागत है ऐसा पूर्व में ही कहा गया है । इस प्रकरण से ऐसा ज्ञात होता है कि—

श्री वीरसेनाचार्यपर्यन्त दक्षिण की आचार्यपरम्परा अविच्छिन्न परम्परा थी और उत्तर की आचार्य परम्परा व्युच्छिन्न परम्परा है।

तात्पर्य यह है कि दक्षिणप्रतिपत्ति के अनुसार ही वर्तमान काल में तीन कम नौ करोड़ संयत—मुनियों की संख्या प्रसिद्ध है। उसी को कहते हैं—

सिद्धान्तचक्रवर्ती श्रीनेमिचन्द्राचार्य ने गोम्मटसार ग्रंथ में इसी तीन कम नौ करोड़ संख्या का कथन किया है। श्रीवसुनन्दि सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्य ने मूलाचार की तात्पर्यवृत्ति टीका में यही संख्या लिखी है तथा अन्य अनेक ग्रंथों में भी ऐसा ही सुना जाता है—

श्लोकार्थ—ढाई द्वीपों में जो तीन कम नव करोड़ मुनिराज हैं, उन सबकी हम गुरुभक्तिपूर्वक वन्दना करते हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. ३३ से ३६)

१४. सिद्धान्त नवनीत

भाववेदी स्त्री में चौदहों गुणस्थान होते हैं ये द्रव्य से पुरुष हैं

मनुष्यिनियों में मिथ्यादृष्टि द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? कोड़ा कोड़ाकोड़ी ऊपर और कोड़ा कोड़ाकोड़ा कोड़ी के नीचे छठे वर्ग के ऊपर और सातवें वर्ग के नीचे मध्य की संख्याप्रमाण हैं ।।४८।।

हिन्दी टीका—इस सूत्र का व्याख्यान मनुष्य पर्याप्त की संख्या प्रतिपादन करने वाले सूत्र के व्याख्यान के समान ही है। अन्तर केवल इतना है कि पंचम वर्ग के त्रिभाग को पाँचवें वर्ग में प्रक्षिप्त कर देने पर मनुष्यिनियों का प्रमाण लाने के लिए अवहारकाल होता है। उस अवहारकाल से सातवें वर्ग के भाजित करने पर मनुष्यिनियों के द्रव्य का प्रमाण आता है। इस प्रकार जो मनुष्यिनियों की संख्या प्राप्त हो, उसमें से तेरह गुणस्थान के प्रमाण के घटा देने पर मिथ्यादृष्टि मनुष्यिनियों का प्रमाण होता है।

पुनः मनुष्यिनियों में सासादन से प्रारम्भ करके अयोगिकेवलीपर्यन्त संख्या निरूपण के लिए सूत्र अवतरित होता है—

मनुष्यिनियों में सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ।।४९।।

हिन्दी टीका—मनुष्यों के गुणस्थान में कथित सासादन आदि गुणस्थानवर्तियों का संख्यातवां भाग सासादन आदि गुणस्थानप्रतिपन्न जीवों का प्रमाण मनुष्यिनियों में होता है।

प्रश्न—ऐसा कैसे ?

उत्तर—क्योंकि, अप्रशस्त वेद के उदय के साथ प्रचुर जीवों को सम्यग्दर्शन का लाभ नहीं होता है।

प्रश्न—यह भी कैसे जाना जाता है?

उत्तर—"नपुंसक वेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव सबसे स्तोक हैं। स्त्रीवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीव उनसे असंख्यातगुणे हैं और पुरुषवेदी असंयत सम्यग्दृष्टि

उनसे असंख्यातगुणे हैं।''इस अल्पबहुत्व के प्रपिपादन करने वाले सूत्र से स्त्रीवेदियों के अल्प होने का कारण जाना जाता है और इसी से सासादन सम्यग्दृष्टि आदिक के भी स्तोकपना सिद्ध हो जाता है परन्तु इतनी विशेषता है कि उन सासादन सम्यग्दृष्टि आदि योनिनियों का प्रमाण इतना है, यह नहीं जाना जाता है क्योंकि इस काल में यह उपदेश नहीं पाया जाता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. ७२)

१५. सिद्धान्त नवनीत

सम्यग्दृष्टि जीवों में अल्पबहुत्व स्थान ३२ हैं। चतुर्गति की अपेक्षा कहाँ कम हैं, कहाँ अधिक हैं यह निरूपण है

अधुना चतुर्गत्यपेक्षया सम्यग्दृष्टिषु क्व क्व बहुभागाधिकाः क्व क्व हीनाः इति दर्श्यते—

सर्वाधिकसम्यग्दृष्टयः सौधर्मैशानयोः[१] सन्ति। ततो बहुखंडहीनाः सानत्कुमार-माहेन्द्रयोः[२], ततो हीनाः ब्रह्म-ब्रह्मोत्तरयोः[३], ततो हीना लांतवकापिष्ठयोः[४], ततो हीनाः शुक्रमहाशुक्रयोः[५], ततो हीना शतार-सहस्त्रारयोः[६], ततो बहुभागहीनाः ज्योतिष्कदेवेषु[७], ततो हीना वाणव्यन्तरेषु[८], ततो हीना भवनवासिदेवेषु[९], ततो हीनाः तिर्यक्षु[१०], ततो हीनाः प्रथमनारकपृथिव्यां[११], ततो हीनाः द्वितीयपृथिव्यां[१२], ततो हीनाः तृतीयपृथिव्यां[१३], ततो हीनाः चतुर्थपृथिव्यां[१४], ततो हीनाः पंचमपृथिव्यां[१५], ततो हीनाः षष्ठपृथिव्यां[१६], ततो हीनाः सप्तमपृथिव्यां[१७]।

पृनश्च ततो हीनाः आनतप्राणतयोः[१८], ततो हीनाः आरणाच्युतयोः[१९], ततो हीनाः अधस्तनाधस्तन-ग्रैवेयकेषु[२०], ततो हीनाः अधस्तनमध्यमग्रैवेयकेषु[२१], ततो हीनाः अधस्तनोपरिमग्रैवेयकेषु[२२], ततो हीनाः मध्यमाधस्तनग्रैवेयकेषु[२३], ततो हीनाः मध्यममध्यमग्रैवेयकेषु[२४], ततो हीनाः मध्यमोपरिमग्रैवेयकेषु[२५], ततो हीनाः उपरिमाधस्तनग्रैवेयकेषु[२६], ततो हीनाः उपरिममध्यमग्रैवेयकेषु[२७], ततो हीनाः उपरिमोपरिमग्रैवेयकेषु[२८]। ततो हीनाः नवानुदिशेषु[२९], ततो हीनाः विजयवैजयंत-जयंतापराजितानुत्तरेषु[३०], ततो हीनाः सर्वार्थसिद्धिषु[३१], ततोऽपि बहुभागहीनाः एकभागमात्राः वा मनुष्येषु[३२] इति ज्ञातव्याः।

इमानि द्वात्रिंशत् स्थानानि सम्यग्दृष्टीनां भवन्तीति।

अथवा संक्षेपेण—सर्वाधिकाः सम्यग्दृष्टयो देवगतिषु, ततो हीनाः तिर्यग्गतिषु, ततो हीना नरकगतिषु, ततोऽपि हीनाः मनुष्यगतिषु सन्तीति।

अब चतुर्गति की अपेक्षा सम्यग्दृष्टियों में कहाँ-कहाँ बहुभाग अधिक संख्या है और कहाँ-कहाँ हीन हैं? यह प्रदर्शित करते हैं—

सौधर्म और ईशान स्वर्ग में सर्वाधिक सम्यग्दृष्टि जीव हैं। उससे बहुखंडहीन सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग में हैं। उससे कम ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में हैं, उससे कम लांतव-कापिष्ठ स्वर्ग में हैं, उससे कम शुक्र-महाशुक्र स्वर्ग में हैं,उससे कम शतार-सहस्त्रार स्वर्ग में हैं, उससे बहुभागहीन ज्योतिषी देवों में सम्यग्दृष्टि होते हैं, उससे कम वाण-व्यंतर देवों में हैं, उससे कम भवनवासी देवों में हैं, उससे कम सम्यग्दृष्टि तिर्यंचों में होते हैं, उससे कम प्रथम नरक में होते हैं, उससे कम द्वितीय नरक पृथिवी में हैं, उससे कम तृतीय नरक पृथिवी में हैं, उससे कम चतुर्थ नरक में हैं, उससे कम पंचम नरकपृथिवी में हैं, उससे कम छठी नरक पृथिवी में और उससे कम सम्यग्दृष्टि सातवीं नरकपृथिवी में पाये जाते हैं।

पुनः उससे कम सम्यग्दृष्टि जीव आनत-प्राणत स्वर्ग में होते हैं, उससे कम आरण-अच्युत स्वर्ग में हैं, उससे कम नीचे-नीचे के ग्रैवेयक विमानों में, उससे कम अधस्तन मध्यम ग्रैवेयक में, उससे कम अद्यस्तन उपरिम ग्रैवेयक विमानों में, उससे कम मध्यम अधस्तन ग्रैवेयकों में,उससे कम मध्यम-मध्यम ग्रैवेयकों में,उससे कम मध्यम उपरिम ग्रैवेयकों में , उससे कम उपरिम अधस्तन ग्रैवेयकों में, उससे कम उपरिम मध्यम ग्रैवेयकों में और उससे कम सम्यग्दृष्टि देवों की संख्या उपरिम-उपरिम ग्रैवेयकों में पाई जाती है।

इसी प्रकार आगे उससे कम सम्यग्दृष्टि जीव नव अनुदिश विमानों में होते हैं, उससे कम विजय-वैजयंत-जयन्त और अपराजित नामक चार अनुत्तर विमानों में तथा उससे भी कम सर्वार्थसिद्धि नामक अंतिम अनुत्तर विमान में हैं, उससे भी बहुभागहीन अथवा एक भागमात्र सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यों में होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

सम्यग्दृष्टियों के ये उपर्युक्त ३२ स्थान होते हैं।

अथवा संक्षेप से वर्णन इस प्रकार है कि देवगति में सबसे अधिक सम्यग्दृष्टि होते हैं, उससे कम तिर्यंच गति में, उससे कम नरकगति में और उससे भी कम मनुष्यगति में होते हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. ९०-९१)

१६. सिद्धान्त नवनीत

असंख्यात प्रदेश वाले लोक में अनंत संख्या वाले जीव कैसे रह सकते हैं ?

कश्चिदाशंकते — असंख्यातप्रदेशिनि लोके अनन्तसंख्याजीवाः कथं तिष्ठन्तीति चेत्?

तस्य परिहारः क्रियते — ''अवगेज्झमाणजीवाजीवसत्तण्णहाणुववत्तीदो अवगाहण धम्मिओ लोगागासो त्ति इच्छिदव्वो खीरकुंभस्स मधुकुंभो व्व[२१]।'' यथा मधुभृते कुंभे तत्प्रमाणदुग्धे प्रक्षिप्ते सति समस्तमपि दुग्धं तस्मिन्नेव सम्माति एतदवगाहन-शक्तिस्तत्र दृश्यते तथैव असंख्यातप्रदेशिनि लोकाकाशे अपि अनन्ताः जीवाः अनन्तानन्त-पुद्गलाश्चापि सम्मान्ति।

यहाँ कोई शंका करता है कि असंख्यात प्रदेश वाले लोक में अनन्त संख्या वाले जीव कैसे रह सकते हैं ?

इसका समाधान करते हैं कि अवगाह्यमान जीव और अजीव द्रव्यों की सत्ता अन्यथा न बन सकने से क्षीरकुंभ का मधुकुंभ के समान अवगाहनधर्म वाला लोकाकाश है। जैसे क्षीरकुंभ का मधुकुम्भ में अवगाहन हो जाता है अर्थात् मधु से भरे हुए कलश में तत्प्रमाण वाले दूध से भरे हुए कलश का दूध डाल दिया जाए, तो समस्त दूध उसी में समा जाता है, ऐसी अवगाहनाशक्ति देखी जाती है। उसी के समान आकाश की भी ऐसी अवगाहनाशक्ति है कि असंख्य प्रदेशी होते हुए भी उसमें अनन्त जीव और अनंतानंत पुद्गलों का अवगाहन हो जाता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. १८३)

१७. सिद्धान्त नवनीत

प्रमत्तसंयत के उपशमसम्यक्त्व के साथ तैजस व आहारक नहीं होते हैं

विशेषेण तु प्रमत्तसंयतस्य उपशमसम्यक्त्वेन सह तेजसाहारौ न स्तः।

प्रमत्तसंयत के उपशमसम्यक्त्व के साथ तैजससमुद्घात और आहारकसमुद्घात नहीं होते हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. २७९)

१८. सिद्धान्त नवनीत

द्रव्यप्रमाणानुगम अर्थात् पुस्तक तीन से आगे के सूत्रों की रचना श्री भूतबली आचार्य ने की है। प्रारंभ के सत्प्ररूपणा सूत्र श्री पुष्पदंताचार्य ने बनाये हैं

अस्मिन् षट्खण्डागमग्रन्थे सत्प्ररूपणाप्रतिपादकानि सप्तसप्तत्य- धिकशतसूत्राणि श्रीपुष्पदन्ताचार्यविरचितानि सन्ति। ततः परं अतः प्रभृति द्रव्यप्रमाणानुगमादिप्रतिपादकानि सूत्राणि श्रीभूतबल्याचार्यविरचितानि सन्ति इति ज्ञातव्यं भवद्भिः। तथैवोक्तं श्रीवीरसेनाचार्येण —

''संपहि चोद्दसण्हं जीवसमासाणमत्थित्तमवगदाणं सिस्साणं तेसिं चेव परिमाणपडिबोहणट्ठं भूदबलियाइरियो सुत्तमाह[२२] — ''

सिद्धान्तचिंतामणि टीका — इस षट्खण्डागम ग्रंथ में सत्प्ररूपणा का प्रतिपादन करने वाले एक सौ सतत्तर (१७७) सूत्र श्री पुष्पदंत आचार्य के द्वारा रचित हैं। उसके आगे यहाँ इस द्रव्यप्रमाणानुगम के प्रथम सूत्र से द्रव्यप्रमाणानुगम आदि का प्रतिपादन करने वाले ये सभी सूत्र श्रीभूतबली आचार्य के द्वारा विरचित हैं, ऐसा आप लोगों को जानना चाहिए।

उसी बात को श्रीवीरसेन आचार्य ने भी कहा है—

"जिन्होंने चौदहों गुणस्थानों के अस्तित्व को जान लिया है, ऐसे शिष्यों को अब उन्हीं चौदहों गुणस्थानों के अर्थात् चौदहों गुणस्थानवर्ती जीवों के परिमाण (संख्या) का ज्ञान कराने के लिए भूतबलि आचार्य आगे का सूत्र कहते हैं"—

तृतीय पुस्तक के प्रारंभ में यह भूमिका श्री भूतबली आचार्य ने बनाई है इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि आगे के सभी सूत्र श्री भूतबली आचार्य द्वारा बनाये गये हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. ७-८)

१९. सिद्धान्त नवनीत

ग्यारह प्रकार के अनंत का संक्षिप्त लक्षण

अत्रानन्ताः इति प्रमाणे कथिते सति तदपि अनन्तमनेकविधं। नामानन्त-स्थापनानन्त-द्रव्यानन्त-शाश्वतानन्त-गणनानन्त-अप्रदेशिकानन्त-एकानन्त-उभयानन्त-विस्तारानन्त-सर्वानन्त-भावानन्तैरनन्तस्य एकादश भेदाः सन्ति।

तत्र कारणनिरपेक्ष संज्ञा इति नामानन्तं। काष्ठादिकर्मसु तदिदमनन्तं इति स्थापनानन्तं। वर्तमानपर्यायनिरपेक्षं द्रव्यानन्तं। न विद्यते अन्तो विनाशो यस्य तदनन्तं द्रव्यं शाश्वतानन्तं।

यद् गणनानन्तं तद् बहुवर्णनीयं अनंतरमेव प्रतिपाद्यते। एकप्रदेशे परमाणौ अप्रदेशानन्तः।

लोकमध्ये आकाशप्रदेशानां एकश्रेणीं दृश्यमाने अन्ताभावात् एकानंतं। लोकमध्ये आकाशप्रदेशपंक्तीनां उभयदिशोः अवलोक्यमाने अन्ताभावाद् उभयानन्तं। आकाशस्य प्रतररूपेणावलोक्यमाने अन्तो नास्तिइति विस्तारानन्तं। तदेवाकाशस्य घनरूपेणाव-लोक्यमाने अन्तो नास्तीति सर्वानन्तं। त्रिकालजाता-नन्तपर्यायपरिणतजीवादिद्रव्यं भावानन्तमिति।

यहाँ सूत्र में "अनंत" इस प्रमाण शब्द का कथन करने पर वह अनन्त शब्द भी अनेक प्रकार का माना गया है—

नाम अनंत, स्थापना अनंत, द्रव्य अनंत, शाश्वत अनंत, गणना अनंत, अप्रदेशिक अनंत, एक अनंत, उभय अनंत, विस्तार अनंत, सर्व अनंत और भाव अनंत इस प्रकार अनंत के ग्यारह भेद हैं।

उनमें से कारण के बिना ही संज्ञा का होना नाम अनंत है।

काण्ड आदि कर्मो में यह अनंत है, इस प्रकार की स्थापना करना स्थापनानंत है अर्थात् काष्ठकर्म, चित्रकर्म, पुस्तकर्म, लेप्यकर्म, लेनकर्म, शैलकर्म, भित्तिकर्म, गृहकर्म, भेंडकर्म अथवा दन्तकर्म में अथवा अक्ष(पासा) हो या कोड़ी हो अथवा दूसरी कोई वस्तु हो उसमें यह अनंत है, ऐसी स्थापना कर देना स्थापना अनंत कहलाता है ।

वर्तमान पर्याय की अपेक्षा के बिना ही उसे अनंतरूप कथन करना द्रव्य अनंत है । जिसका कोई अंत नहीं होता,जो कभी नष्ट नहीं होता है वह अनंतद्रव्य शाश्वतानंत कहलाता है। जो गणना में अनंत है, वह बहुवर्णनीय है एक परमाणु को अप्रदेशिकानन्त कहते हैं।

लोक के मध्य से आकाश-प्रदेशों की एक श्रेणी को देखने पर उसका अन्त नहीं पाया जाता है, इसलिए उसे एकानन्त कहते हैं।

लोक के मध्य से आकाशप्रदेश पंक्ति को दो दिशाओं में देखने पर उसका अन्त नहीं पाया जाता है, इसलिए उसे उभयानन्त कहते हैं। आकाश को प्रतररूप से देखने पर उसका अंत नहीं पाया जाता है अतः उसे विस्तारानंत कहते है उसी आकाश को घनरूप से देखने पर उसका अन्त नहीं पाया जाता है इसलिए उसे सर्वानन्त कहते हैं। त्रिकालजात—तीनों कालों में उत्पन्न होने वाली अनंत पर्यायों से परिणत जीवादि द्रव्य नोआगम भावानन्त हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. १५)

२०. सिद्धान्त नवनीत

मिथ्यादृष्टि अनंतानंत हैं, कभी समाप्त नहीं होंगे

इतो विस्तरः—एकत्र अनंतानंतावसर्पिण्युत्सर्पिणीनाम् समयान् स्थापयित्वा अन्यत्र मिथ्यादृष्टिजीवराशीश्च संस्थाप्य कालेभ्यः एकः समयः मिथ्यादृष्टिराशिभ्यः एको जीवश्च निष्कासयितव्यः। एवं क्रियमाणे अनंतानंतावसर्पिण्युत्सर्पिणीनां सर्वे समयाः समाप्तिमवाप्नुवन्ति किन्तु मिथ्यादृष्टिजीवराशिप्रमाणं न समाप्यते इति ज्ञातव्यम्।

एक तरफ अनन्तानन्त अवसर्पिणी और अनन्तानन्त उत्सर्पिणी काल के समयों को स्थापित करके दूसरी तरफ मिथ्यादृष्टि जीवों की राशि करके काल के समयों में से एक-एक समय और उसी के साथ मिथ्यादृष्टि जीवराशि के प्रमाण में से एक-एक जीव कम करते जाना चाहिए—निकालते जाना चाहिए। इस प्रकार करते रहने पर अनंतानंत अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों के सब समय समाप्त हो जाते हैं, किन्तु मिथ्यादृष्टि जीवराशि का प्रमाण समाप्त नहीं होता है ऐसा जानना चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. १७)

२१. सिद्धान्त नवनीत

मिथ्यादृष्टि अनंतलोक प्रमाण हैं उसका स्पष्टीकरण

खेत्तेण अणंता लोगा।।४।।

क्षेत्रापेक्षया मिथ्यादृष्टयो जीवा अनंतलोकप्रमाणाः सन्ति।

क्षेत्रप्रमाणेन मिथ्यादृष्टिजीवराशिः कथं माप्यते?

बुद्ध्यामाप्यते आगमाधारेणेति।

बुद्ध्या पि सा राशिः कथं माप्यते?

तदेव कथयन्ति, एकैकस्मिन् लोकाकाशप्रदेशे एकमेकं मिथ्यादृष्टिजीवं निक्षिप्य एको लोकः इति मनसा संकल्पयितव्यः। एवं पुनः पुनः माप्यमाने मिथ्यादृष्टिजीवराशिः अनंतलोकमात्रो भवति।

क्षेत्रप्रमाण की अपेक्षा अनन्त लोकप्रमाण मिथ्यादृष्टि जीवराशि का प्रमाण है ।।४।।

हिन्दी टीका—क्षेत्र की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तलोकप्रमाण माने गये हैं।

प्रश्न—क्षेत्रप्रमाण के द्वारा मिथ्यादृष्टि जीवराशि कैसी मापी जाती है ?

उत्तर—आगम के आधार से बुद्धि के द्वारा मिथ्यादृष्टि जीव मापे जाते हैं।

प्रश्न—बुद्धि से वे जीव कैसे मापे जाते हैं ?

उत्तर—उसी को कहते हैं—लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक मिथ्यादृष्टि जीव को निक्षिप्त करके एक लोक हो गया, इस प्रकार मन से संकल्प करना चाहिए। इस प्रकार पुनः पुनः माप करने पर मिथ्यादृष्टि जीवराशि अनन्तलोकप्रमाण होती है।

आचार्यदेव के द्वारा कहा भी है—

श्लोकार्थ—लोकालोक के एक-एक प्रदेश पर एक-एक मिथ्यादृष्टि जीव को निक्षिप्त करे, इस प्रकार पूर्वोक्त लोकप्रमाण के क्रम से गणना करते जाने पर अनन्तलोक हो जाते हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. २०)

२२. सिद्धान्त नवनीत

महामत्स्य का वेदना समुद्घात का प्रकरण

अत्र कश्चिदाह—यो योजनसहस्रायामो महामत्स्यः स्वयंभूरमणसमुद्रस्य बाह्यो तटे वेदनासमुद्घातेन पीडितः कापोतलेश्यया[९]-वातवलयेन लग्नः इति एतेन वेदनासूत्रेण सह विरोधः किं न भवति इति चेत?

आचार्यः प्राह—न भवति, स्वयंभूरमणसमुद्रस्य बाह्यवेदिकायाः परभागस्थित-पृथिव्याः ग्रहणं भवति 'बाह्यतट' इति पदेन।

यदि एतत् तर्हि अपि महामत्स्यः कापोतलेश्यया संसक्तो न भवितुं अर्हति? इति चेत्?

नैतत् शंकनीयं, किंच पृथिवीस्थितप्रदेशेषु अधस्तन वातवलयानामवस्थानं विद्यते एव। एष अर्थः यद्यपि पूर्वाचार्यसंप्रदायविरुद्धस्तर्ह्यपि आगमयुक्तिबलेन श्रीवीरसेनाचार्येण प्ररूपितः।

उक्तं च धवलाटीकायां—''एसो अत्थो जइवि पुव्वाइरियसंपदायविरुद्धो तो वि तंतजुत्तिबलेण अम्हेहिं परुविदो। तदो इदमित्थमेवेत्ति णेहासंगहो कायव्वो, अइंदियत्थविसए छदुमत्थवियप्पिदजुत्तीणं णिण्णयहेउत्ताणुववत्तीदो। तम्हा उवएसं लद्धूण विसेसणिण्णयो एत्थ कायव्वो त्ति[२३]।''

यहाँ कोई कहता है कि जो एक हजार योजन का महामत्स्य है, वह वेदना समुद्घात से पीड़ित हुआ स्वयंभूरमण समुद्र के बाह्य तट पर कापोतलेश्या अर्थात् तनुवातवलय से लगता है,इस वेदनाखंड के सूत्र के साथ पूर्वोक्त व्याख्यान विरोध को क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यदेव कहते हैं कि नहीं होता है क्योंकि यहां पर ''बाह्यतट ''इस पद से स्वयंभूरमण समुद्र की बाह्य वेदिका के परभाग में स्थित पृथिवी का ग्रहण किया गया है।

प्रश्न—यदि ऐसा माना जाय तो महामत्स्य कापोत लेश्या से संसक्त नहीं हो सकता है ?

उत्तर—ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए ,क्योंकि पृथिवी स्थित प्रदेशों में अधस्तन वातवलय का अवस्थान रहता ही है। यह अर्थ यद्यपि पूर्वाचार्यों के सम्प्रदाय से विरूद्ध है तो भी आगम के आधार पर युक्ति के बल से श्रीवीरसेनाचार्य द्वारा प्रतिपादित किया गया है।

जैसाकि धवला टीका में कहा भी है—

''यद्यपि यह अर्थ पूर्वाचार्यों के सम्प्रदाय से विरुद्ध है, तो भी आगम के आधार पर युक्ति के बल से हमने इस अर्थ का प्रतिपादन किया है। इसलिए यह अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है, इस विकल्प का संग्रह यहाँ छोड़ना नहीं, क्योंकि अतीन्द्रिय पदार्थों के विषय में छद्मस्थ जीवों के द्वारा कल्पित युक्तियों के विकल्प रहित निर्णय के लिए हेतुता नहीं पाई जाती है। इसलिए उपदेश को प्राप्त करके इस विषय में विशेष निर्णय लेना चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. २१-२२)

२३. सिद्धान्त नवनीत

श्री पद्मप्रभ के समवसरण में मुनियों की संख्या सबसे अधिक थी

सर्वतीर्थकरापेक्षया पद्मप्रभभट्टारकस्य शिष्यपरिवारोऽधिकः, त्रयलक्ष-त्रिंशत्सहस्रसंख्यः।

सभी तीर्थंकरों की अपेक्षा पद्मप्रभ भट्टारक(भगवान)का शिष्य परिवार सबसे अधिक—तीन लाख तीस हजार संख्याप्रमाण है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. ३४)

२४. सिद्धान्त नवनीत

मनुष्यों में सबसे कम कहाँ है ? और सबसे अधिक कहाँ हैं ?

''तं जहा—सव्वत्थोवा अंतरदीवमणुस्सा। उत्तरकुरुदेवकुरुमणुवा संखेज्जगुणा। हरिरम्मयवासेसु मणुआ संखेज्जगुणा। हेमवदहेरण्णवदमणुआ संखेज्जगुणा। भरहेरावदमणुआ संखेज्जगुणा। विदेहे मणुआ संखेज्जगुणा त्ति।[२४]''

अन्तर्द्वीपों के मनुष्य सबसे थोड़े हैं। उत्तरकुरु और देवकुरु के मनुष्य उनसे संख्यातगुणे हैं। हरि और रम्यक् क्षेत्रों के मनुष्य उत्तरकुरु और देवकुरु के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्रों के मनुष्य हरि और रम्यक् के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्रों के मनुष्य हरि और रम्यक् के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं। विदेह क्षेत्र के मनुष्य भरत और ऐरावत के मनुष्यों से संख्यातगुणे हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. ३४)

२५. सिद्धान्त नवनीत

देवगति में असंयत सम्यग्दृष्टि सबसे अधिक हैं

तस्य किंचिदुहारणं दीयते—सामान्येन कथितासंयतसम्यग्दृष्टिजीवराशेः असंख्यातबहुभागप्रमिता देवगतौ असंयतसम्यग्दृष्टिजीवराशिः अस्ति।

कथमेतत्?

देवेषु बहूनां सम्यक्त्वोत्पत्तिकारणानामुपलम्भात्।

देवानां सम्यक्त्वोत्पत्तिकारणानि कानि इति चेत्?

उच्यते श्रीवीरसेनाचार्येण—

''जिणबिंबिद्धिमहिमादंसण-जाइस्सरण-महिद्धिंदादिदंसण-जिणपायमूलधम्म-सवणादीणि। तिरिक्खणेरइया पुण गरुवपावभारेणोट्ठद्धत्तादो संकिलिट्ठतरत्तादो मंदबुद्धित्तादो बहूणं सम्मत्तुप्पत्तिकारणाणम-भावादो च सम्माइट्ठिणो थोवा हवंति[२५]।''

सामान्य से कही गई असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि का असंख्यात बहुभागप्रमाण देवगति में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि है।

प्रश्न—ऐसा क्यों है ?

उत्तर—क्योंकि देवों में सम्यक्त्व की उत्पत्ति के बहुत से कारण पाये जाते हैं। देवों में सम्यक्त्व उत्पत्ति के कौन-कौन से कारण हैं? ऐसा प्रश्न होने पर श्रीवीरसेनाचार्य ने धवला टीका में कहा है—

जिनबिम्बसम्बन्धी अतिशय की महिमा का दर्शन, जातिस्मरण का होना, महर्द्धिक इन्द्रादिक का दर्शन और जिनेन्द्रभगवान के पादमूल में धर्म का श्रवण आदि कारणों से देवों में सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होती है। किन्तु चूंकि तिर्यंच और नारकी गुरुतर पापों के भार से व्याप्त रहते हैं, उनके परिणाम अतिशय संक्लिष्ट रहते हैं, वे मन्दबुद्धि होते हैं इसलिए उनमें सम्यक्त्व की उत्पत्ति के बहुत से कारणों का अभाव पाया जाता है और संख्या में भी वहाँ कम जीवों को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. ४३)

२६. सिद्धान्त नवनीत

बद्धायुष्क मनुष्य या तिर्यंच कहाँ-कहाँ जन्म ले सकते हैं

तात्पर्यमेतत्—कदाचित् केचित् बद्धायुष्काः मनुष्याः तिर्यक्षु उत्पद्यन्ते तर्हि भोगभूमिष्वेव, मनुष्येषु उत्पद्यन्ते तर्हि भोगभूमिष्वेव इमे स्वल्पप्रमाणाः एव। अतः अत्र टीकायां देवाः नारकाः एव गृहीताः तेऽपि मनुष्येषु एव उत्पद्यन्ते अतः संख्याताः एव। किंच मनुष्यराशेः संख्यातत्वात्। तथैव केवलिनां समुद्घाते कपाटे आरोहन्तः विंशतिप्रमाणाः अवरोहन्तः विंशतिप्रमाणा भवन्ति इति कथितं अस्ति। किंच औदारिकमिश्रयोगस्य कपाटसमुद्घाते एव संभवत्वात्।

तात्पर्य यह है कि कदाचित् कोई बध्दायुष्क मनुष्य तिर्यंचगति में उत्पन्न हो जाते हैं तो भोगभूमियाँ तिर्यंचों में ही उत्पन्न होते है, यदि मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं तो भोगभूमियों में ही उत्पन्न होते हैं, इनकी संख्या थोड़ी ही है अतः यहाँ टीका में देव और नारकी को ही ग्रहण किया है वे भी मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं अतः संख्यात ही हैं क्योंकि मनुष्यराशि संख्यात ही है। इसी प्रकार केवलियों के समुद्घात काल में कपाट समुद्घात में चढ़ते हुए बीस की संख्या रहती है और उतरते हुए भी बीस की संख्या रहती है, ऐसा कहा गया है क्योंकि औदारिकमिश्रकाययोग वाले जीव कपाट समुद्घात में ही पाए जाते हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. १२०)

२७. सिद्धान्त नवनीत

स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टी देवियों से कुछ अधिक हैं

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—**वेदानुवादेन स्त्रीवेदराशिषु मिथ्यादृष्टयः द्रव्यप्रमाणेन कियन्तः इति प्रश्ने सति उत्तरं दीयते—देवीभ्यः सातिरेकाः इति।**

देवेभ्यः देव्यः द्वात्रिंशद्गुणा भवन्ति। अस्मिन् प्रमाणे भावस्त्रीवेदमानुषीणां भावस्त्रीवेदतिरश्चीनां संख्यामेलने सति देवीभ्यः सातिरेकाः, स्त्रीवेदाः भवन्ति।

वेदमार्गणा के अनुवाद से स्त्रीवेदियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? देवियों से कुछ अधिक हैं।१२४।।

हिन्दी टीका—वेदमार्गणा की अपेक्षा स्त्रीवेदी जीवराशियों में मिथ्यादृष्टि जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर दिया गया है कि स्त्रीवेदी राशि देवियों से साधिक होती है।

देवों से देवियाँ बत्तीसगुणी अधिक होती हैं। इस प्रमाण में भावस्त्रीवेदी मनुष्यिनियों में भावस्त्रीवेदी तिर्यंचों की संख्या मिलाने पर देवियों से स्त्रीवेदी जीवों की संख्या साधिक होती है। अर्थात् देवियां सबसे अधिक हैं उनमें मनुष्यिनी और तिर्यंचिनियों की संख्या मिलाने पर समस्त स्त्रीवेदियों की संख्या हो जाती है। उनमें से यहां मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदियों की संख्या ली है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. १२९)

२८. सिद्धान्त नवनीत

ज्ञान की अपेक्षा कौन से ज्ञानी कम हैं और कौन से अधिक हैं

अथवा सर्व जीवराशि के अनंत खंड करने पर बहुभाग मत्यज्ञानी और श्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के अनंत खण्ड करने पर बहुभाग केवलज्ञानी जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग तीन ज्ञान वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग तीन ज्ञान वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग तीन ज्ञान वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खण्ड करने पर बहुभाग दो ज्ञान वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के संख्यात खंड करने पर बहुभाग दो ज्ञान वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग दो ज्ञान वाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग दो ज्ञान वाले संयतासंयत जीव हैं। शेष एक भाग के असंख्यात खंड करने पर बहुभाग तीन ज्ञान वाले संयतासंयत जीव हैं। शेष का जानकर कथन करना चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. १४६-१४७)

२९. सिद्धान्त नवनीत

श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान का दर्शन क्यों नहीं है ?

श्रुत-मनःपर्ययज्ञानयोः दर्शनं किन्नोच्यते?

न तावत् श्रुतज्ञानस्य दर्शनमस्ति, तस्य मतिज्ञानपूर्वत्वात्। न मनःपर्ययज्ञानस्यापि दर्शनमस्ति, तस्य तथाविधत्वात्।

शंका — श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान का दर्शन क्यों नहीं कहा जाता है ?

समाधान — श्रुतज्ञान का दर्शन तो हो नहीं सकता है, क्योंकि वह मतिज्ञानपूर्वक होता है। उसी प्रकार मनःपर्ययज्ञान का भी दर्शन नहीं है, क्योंकि, मनःपर्ययज्ञान भी उसी प्रकार है अर्थात् मनःपर्ययज्ञान भी मतिज्ञानपूर्वक होता है, इसलिये उसका दर्शन नहीं पाया जाता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. १५७)

३०. सिद्धान्त नवनीत

क्षेत्र कितने प्रकार का है ?

द्रव्यार्थिकनयं प्रतीत्य चैकविधं। अथवा प्रयोजनमाश्रित्य द्विविधं लोकाकाशमलोकाकाशं चेति। लोक्यन्ते उपलभ्यन्ते यस्मिन् जीवादिद्रव्याणि स लोकः। तद्विपरीतोऽलोकः। अथवा देशभेदेन त्रिविधः, मंदरचूलिकातः ऊर्ध्वमूर्ध्वलोकः, मंदरमूलादधः अधोलोकः, मंदरपरिच्छिन्नो मध्यलोक इति।

समाधान — द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा क्षेत्र एक प्रकार का है अथवा प्रयोजन के आश्रय से क्षेत्र दो प्रकार का है, लोकाकाश और अलोकाकाश। जिसमें जीवादि द्रव्य अवलोकन किए जाते हैं, पाये जाते हैं, उसे लोक कहते हैं। इसके विपरीत जहाँ जीवादि द्रव्य नहीं देखे जाते हैं, उसे अलोक कहते हैं। अथवा देश के भेद से क्षेत्र तीन प्रकार का है — मंदराचल (सुमेरूपर्वत)की चूलिका से ऊपर का क्षेत्र ऊर्ध्वलोक है, मंदराचल के मूल से नीचे का क्षेत्र अधोलोक है तथा मंदराचल से परिच्छिन्न अर्थात् तत्प्रमाण मध्यलोक है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. १८२)

३१. सिद्धान्त नवनीत

केवली भगवान के पद्मासन या खड्गासन से समुद्घात की व्यवस्था

दण्डसमुद्घातगतकेवलिनः कियत् क्षेत्रे तिष्ठन्ति?

चतुर्णां लोकानां असंख्यातभागे, सार्धद्वयद्वीपात् असंख्यातगुणे च निवसन्ति।

कपाटगतकेवलिनः कियत् क्षेत्रे?

त्रयाणां लोकानामसंख्यातक्षेत्रे, तिर्यग्लोकस्य,संख्यातभागे सार्धद्वयद्वीपात् असंख्यातगुणे च। अत्र केवली भगवान् पूर्वाभिमुखो वा उत्तरामुखो वा यदि पल्यंकेन समुद्घातं करोति, तर्हि कपाटबाहल्यं षट्त्रिंशदंगुलानि भवन्ति। अथ यदि कायोत्सर्गेण कपाटं करोति, तर्हि द्वादशांगुलबाहल्यं कपाटं भवति।

प्रतरगतकेवलिनः कियत् क्षेत्रे?

लोकस्यासंख्यातभागेषु। तत्र लोकस्य असंख्यातभागं वातवलयरुद्धक्षेत्रं मुक्त्वा शेषबहुभागेषु निवसंति।

लोकपूरणगतकेवलिनो भगवन्तः कियत् क्षेत्रे?

सर्वलोके इति ज्ञातव्यम्। अत्रापि गणितेन विस्तरः धवलाटीकायां द्रष्टव्योऽस्ति।

अन्यत्रापि सरलभाषायां—''दण्डसमुद्घातं कायोत्सर्गेण स्थितश्चेत्-द्वादशांगुलप्रमाणसमवृत्तं मूलशरीरप्रमाणसमवृत्तं वा। उपविष्टश्चेत्-शरीरत्रिगुणबाहुल्यं वायूनलोकोदयं वा प्रथमसमये करोति। कपाटसमुद्घातं धनुःप्रमाणबाहुल्योदयं पूर्वाभिमुखश्चेत् दक्षिणोत्तरतः करोति। उत्तराभिमुखश्चेत् पूर्वापरतः आत्मप्रसर्पणं द्वितीयसमये करोति।.....प्रतरावस्थायां सयोगकेवली वातवलयत्रयादर्वागेव आत्मप्रदेशैर्निरंतरं लोकं व्याप्नोति। लोकपूरणावस्थायां वातवलयत्रयमपि व्याप्नोति।

तेन सर्वलोकः क्षेत्रम्[२६]।''

तात्पर्यमेतत्—स्वस्थानस्वस्थान-विहारवत्स्वस्थान-केवलिसमुद्घातनामानि त्रीण्येव स्थानानि सयोगिकेवलिभगवतां संभवन्ति। किं च, केवलिसमुद्घातोऽपि सर्वेषां केवलिनां नास्ति केषाञ्चित् केवलिनामेव इति ज्ञात्वा सर्वेभ्यः दशस्थानेभ्यः अनुत्तरं सिद्धस्थानमस्तीति ततः सिद्धपदप्राप्त्यर्थमेव पुरुषार्थो विधेयः अस्माभिर्मुमुक्षुजनैः।

दण्डसमुद्घात को प्राप्त हुए केवलीजीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? सामान्यलोक आदि चार लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अढ़ाईद्वीपसंबंधी लोक से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

कपाटसमुद्घात को प्राप्त हुए केवली कितने क्षेत्र में रहते हैं? सामान्यलोक आदि तीन लोकों के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में, तिर्यग्लोक के संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणे क्षेत्र में रहते हैं।

केवलीजिन पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर समुद्घात को करते हुए यदि पल्यंकासन से समुद्घात को करते हैं तो कपाटक्षेत्र का बाहल्य छत्तीस अंगुल होता है और यदि कायोत्सर्ग से कपाटसमुद्घात करते हैं तो बारह अंगुलप्रमाण बाहल्य वाला कपाटसमुद्घात होता है।

प्रतरसमुद्घात को प्राप्त हुए केवली जिन कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यात बहुभागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं। लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण वातवलय से रुके हुए क्षेत्र को छोड़कर लोक के शेष बहुभागों में रहते हैं।

लोकपूरण समुद्घात को प्राप्त केवली भगवान् कितने क्षेत्र में रहते हैं? सम्पूर्ण लोक में रहते हैं, ऐसा जानना चाहिए। यहाँ भी गणित के द्वारा उसका विस्तृत वर्णन धवला टीका में द्रष्टय है। अन्यत्र भी सरल भाषा में कहा है—समुद्घात करने वाले कायोत्सर्ग से स्थित हैं तो दण्ड समुद्घात को बारह अंगुलप्रमाण समवृत्त (गोलाकार) करेंगे अथवा मूल शरीरप्रमाण समवृत्त करेंगे और यदि वह बैठे हुए हैं तो प्रथम समय में शरीर से त्रिगुण बाहुल्य अथवा तीन वातवलय कम लोकप्रमाण करेंगे। कपाट समुद्घात को यदि पूर्वाभिमुख होकर करेंगे तो दक्षिण-उत्तर की ओर एक धनुषप्रमाण विस्तार होगा और उत्तराभिमुख होकर करेगा तो पूर्व-पश्चिम की ओर द्वितीय समय में आत्मप्रसर्पण करेंगे। इसका विशेष व्याख्यान संस्कृत महापुराण पंजिका में है। प्रतर की अपेक्षा लोक का असंख्यातभागप्रमाण क्षेत्र होता है। प्रतर अवस्था में सयोगकेवली तीनों वातवलयों के नीचे ही आत्मप्रदेशों के द्वारा लोक को व्याप्त करते हैं। लोकपूरण अवस्था में तीनों वातवलयों को भी व्याप्त करते हैं अतः लोकपूरण अवस्था में सर्वलोक क्षेत्र है।

तात्पर्य यह है कि स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान और केवलिसमुद्घात नाम के तीन स्थान सयोगिकेवली भगवन्तों के होते हैं, क्योंकि केवली समुद्घात भी सभी केवलियों के नहीं होता है, किन्हीं-किन्हीं केवलियों के ही होता है, ऐसा जानकर सभी दश स्थानों से अनुत्तर सिद्धस्थान होता है इसलिए सिद्धपद की प्राप्ति हेतु ही हम सभी मुमुक्षुजनों को पुरुषार्थ करना चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. १९३-१९४)

३२. सिद्धान्त नवनीत

परिहारविशुद्धिसंयमी के आहारक व तैजस समुद्घात नहीं होते हैं

विशेषेण तु प्रमत्तसंयते तैजसाहारकौ न स्तः।

इन परिहारविशुद्धिसंयम वालों के प्रमत्तसंयत गुणस्थान में तैजस और आहारक समुद्घात नहीं होते हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. २६०)

३३. सिद्धान्त नवनीत

तैजस शरीर के प्रशस्त-अप्रशस्त दो भेद हैं

तेजोसरीरसमुग्घादो णाम—तेजइयसरीरविउव्वणं। तं दुविहं—णिस्सरणप्पयं अणिस्सरणप्पयं चेदि। तत्थ जं तं णिस्सरणप्पगं तेजइयसरीरविउव्वणं तं पि दुविहं, पसत्थमप्पसत्थं चेदि।

तत्थ अप्पसत्थं बारहजोयणायामं णवजोयणवित्थारं सूचिअंगुलस्स संखेज्जदि-भागबाहल्लं जासवणकुसुमसंकासं भूमिपव्वदादि-दहणक्खमं, पडिवक्खरहियं रोसिंधणं वामंसप्पभवं इच्छियखेत्तमेत्तविसप्पणं।

जं तं पसत्थं तं पि एरिसं चेव, णवरि हंसधवलं दक्खिणंससंभवं अणुकंपाणिमित्तं मारि-रोगादिपसमणक्खमं।

जं तमणिस्सरणप्पयं तेजइयसरीरं तेणेत्थ अणधियारो।

तैजस्क शरीर के विसर्पण का नाम तैजस्कशरीर समुद्घात है। वह दो प्रकार का होता है—निस्सरणात्मक और अनिस्सरणात्मक। उनमें जो निस्सरणात्मक तैजस्कशरीर विसर्पण है, वह भी दो प्रकार का है—प्रशस्ततैजस और अप्रशस्ततैजस। उनमें अप्रशस्तनिस्सरणात्मक तैजस्क शरीरसमुद्घात, बारहयोजन लम्बा, नौ योजन विस्तार वाला, सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग मोटाई वाला, जपाकुसुम के सदृश लालवर्ण वाला, भूमि और पर्वतादि के जलाने में समर्थ, प्रतिपक्षरहित, रोषरूप ईंधन वाला, बायें कंधे से उत्पन्न होने वाला और इच्छित क्षेत्रप्रमाण विसर्पण करने वाला होता है तथा जो प्रशस्त निस्सरणात्मक तैजस्कशरीर समुद्घात है, वह भी विस्तार आदि में तो अप्रशस्त तैजस के ही समान है, किन्तु इतनी विशेषता है कि वह हंस के समान धवलवर्ण वाला है, दाहिने कंधे से उत्पन्न होता है, प्राणियों की अनुकम्पा के निमित्त से उत्पन्न होता है और मारी रोग आदि के प्रशमन करने में समर्थ होता है। इनमें से जो अनिस्सरणात्मक तैजसशरीर समुद्घात है, उसका यहाँ पर अधिकार नहीं है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. १८५)

३४. सिद्धान्त नवनीत

देवों में सबसे अधिक ज्योतिषी देव हैं

वानव्यन्तरादिशेषसर्वे देवा ज्योतिष्कदेवानां संख्यातभागमात्रा भवन्ति।

वाणव्यंतर आदि शेष सम्पूर्ण देव ज्योतिषी देवों के संख्यातवें भाग हैं। अर्थात् ज्योतिषी देव सभी देवों से अधिक हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. ८१)

३५. सिद्धान्त नवनीत

श्री भूतबलि आचार्य कहते हैं कि इन सूत्रों के वक्ता जिनेन्द्रदेव या गणधर देव हैं, हम नहीं हैं।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजद-सम्माइट्ठि त्ति केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।।५।।

सूत्रस्यार्थः सुगमः। अत्र सूत्रे अनुवादपदेन सूत्रस्याकर्तृत्वकथनफलं ज्ञातव्यं अस्यायमर्थः-श्रीभूतबलिसूरिःकथयति अस्य सूत्रार्थस्य वक्तारो जिनेंद्रदेवा गणधरदेवा वा, नाहं, अहं तु केवलं अस्यानुवादमेव करिष्यामीति।

उक्तं च श्री वीरसेनाचार्येण-''अणुवादगहणं सुत्तस्स अकट्टिवुत्तप-रूवणफलं।''

आदेश की अपेक्षा गत्यनुवाद से नरकगति में नारकियों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान के जीव कितने क्षेत्र में रहते हैं? लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं ।।५।।

हिन्दी टीका—सूत्र का अर्थ सुगम है। यहाँ सूत्र में अनुवाद पद के ग्रहण करने का अर्थ सूत्र के अकर्तृकत्व का प्ररूपण करना है। इसका अर्थ यह है—श्रीभूतबली सूरि कहते हैं कि इस सूत्र के वक्ता—अर्थ के कहने वाले जिनेन्द्रदेव अथवा गणधरदेव हैं, न कि मैं। मैं तो केवल इसका अनुवाद ही करूँगा अर्थात् श्रीभूतबली आचार्य ने इस सूत्र की प्रामाणिकता बतलाई है कि साक्षात् जिनेन्द्र भगवान के मुख से निकले हुए ये वचन हम सभी के लिए ग्रहण करने योग्य हैं।

धवला टीका पुस्तक ४ में पृ. ५७ पर श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है-''अनुवाद पद को ग्रहण करने का फल सूत्र के अकर्तृकत्व का प्ररूपण करना है।''

भावार्थ—धवला टीका में श्री वीरसेनाचार्य ने ऐसा कहा है उसी के अनुसार इस सिद्धान्तचिन्तामणि टीका में कहा गया है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ३, पृ. १९५)

षट्खण्डागम पुस्तक-४

(सिद्धान्तचिंतामणि टीका से)

मंगलाचरण

शुक्लध्यानाग्निा दग्ध्वा, कर्मेन्धनानि संयताः।
सिद्धिं प्रापुर्नमस्तेभ्यः, शुक्लध्यानस्य सिद्धये।।१।।

श्लोकार्थ—शुक्लध्यान की अग्नि के द्वारा जिन संयतों ने कर्मरूपी ईंधन को जलाकर भस्म कर दिया है, उन सभी संयतों को शुक्लध्यान की सिद्धि के लिए मेरा नमस्कार है ।।१।।

३६. सिद्धान्त नवनीत

महामत्स्य के शरीर के ऊपर अनेक जीव जन्म ले लेते हैं

पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवों ने अतीत और अनागत काल की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श किया है।।३३।।

हिन्दी टीका—'वा' शब्द से यहाँ स्वस्थान स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घात, इन पदों को प्राप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त जीवों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवाँ भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग और अढ़ाई द्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है, क्योंकि अढ़ाईद्वीप और दो समुद्रों में तथा कर्मभूमि के प्रतिभाग वाले स्वयंप्रभ पर्वत के परभाग में पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तक जीवों का होना संभव है। अतीतकाल में स्वयंप्रभ पर्वत के सम्पूर्ण परभाग को वे जीव स्पर्श करते हैं इसलिए वह क्षेत्र तिर्यग्लोक का संख्यातवाँ भाग मात्र होता है।

शंका—अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र अवगाहना वाले लब्ध्यपर्याप्तक जीवों के संख्यात अंगुल प्रमाण उत्सेध कैसे पाया जा सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मृत पंचेन्द्रियादि त्रस जीवों के कलेवर में अंगुल के संख्यातवें भाग को आदि करके संख्यात योजनों तक क्रमवृद्धि से स्थित शरीरों में उत्पन्न होने वाले लब्ध्यपर्याप्त जीवों के संख्यात अंगुल उत्सेध के प्रति कोई विरोध नहीं है।

अथवा सभी द्वीप और समुद्रों में पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीव होते हैं, क्योंकि पूर्वभव के वैरी देवों के संबंध से एक बंधन में बद्ध षट्कायिक जीवों के समूह से व्याप्त और कर्मभूमि के प्रतिभाग में उत्पन्न हुए औदारिक देह वाले महामच्छादिकों की सर्वद्वीप और समुद्रों में संभावना पाई जाती है।

शंका—महामच्छ की अवगाहना में एक बंधन से बद्ध षट्कायिक जीवों का अस्तित्व कैसे जाना जाता है?

समाधान—वर्गणाखंड में कहे गये अल्पबहुत्वानुयोगद्वार से जाना जाता है। वह इस प्रकार है-'महामत्स्य के शरीर में सबसे कम जगत् प्रतर के असंख्यातवें भागमात्र त्रसकायिक जीव होते हैं। उन त्रसकायिक जीवों के तेजस्कायिक जीव असंख्यातगुणे होते हैं। तेजस्कायिक जीवों से पृथिवीकायिक जीव विशेष अधिक होते हैं। इसी प्रकार से पृथिवीकायिक जीवों से अप्कायिक जीव विशेष अधिक होते हैं। अप्कायिक जीवों से वायुकायिक जीव विशेष अधिक होते हैं और वायुकायिक जीवों से वनस्पतिकायिक जीव अनन्तगुणे होते हैं। वे सभी पर्याप्त ही हों, ऐसा नहीं है। क्योंकि उस महामत्स्य के शरीर में त्रस अपर्याप्तक और तेजस्कायिक जीव संभव है। मृत शरीर में ही पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्त जीव संभव है ऐसा भी कहना युक्त नहीं है, क्योंकि इस बात के विधायक सूत्र का अभाव है। किन्तु महामच्छादि के देह में उन अपर्याप्त जीवों के अस्तित्व का सूचक यही उक्त अल्पबहुत्व सूत्र है। त्रसपर्याप्तराशि से त्रसअपर्याप्तराशि असंख्यातगुणी होती है, इसलिए जहाँ पर त्रस जीवों की संभावना होती है वहाँ पर सर्वत्र पर्याप्त जीवों से अपर्याप्त जीव असंख्यातगुणे होते हैं ऐसा जानना चाहिए। अतएव संख्यात अंगुल बाहल्य वाले तिर्यक्प्रतर के उनंचास खण्ड करके प्रतराकार से स्थापित करने पर तिर्यग्लोक के संख्यातवां भागमात्र पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवों का स्वस्थान, वेदना और कषायसमुद्घातगत क्षेत्र होता है। इस प्रकार से 'वा' शब्द का अर्थ समाप्त हुआ।

मारणान्तिकसमुद्घात और उपपादपद को प्राप्त पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त जीवों ने सर्वलोक स्पर्श किया है, क्योंकि उनके सर्वलोक में गमनागमन के प्रति विरोध का अभाव है।

तात्पर्य यह है कि ये महामत्स्य आदि उत्कृष्ट अवगाहना से सहित जीव तिर्यंच होते हैं, उनके शरीरों में स्थित वायुकायिक, तेजस्कायिक आदि पर्याप्त और अपर्याप्त तिर्यंचों का यहाँ संक्षेप में वर्णन किया गया है। अपर्याप्त जीवों के द्वारा सम्पूर्ण लोक का भी स्पर्श किया गया है। किन्तु उनका वह स्पर्श किंचित् भी कार्यकारी नहीं है। यदि ये महामत्स्य आदि कदाचित् जातिस्मरण के निमित्त से, कदाचित् देवों के सम्बोधन से सम्यग्दर्शन को उत्पन्न कर लेते हैं अथवा कदाचित् संयतासंयत गुणस्थान में जाकर अणुव्रत ग्रहण कर लेते हैं, तब वे स्वर्गलोक में जाते हैं। इसलिए संसार में सम्यग्दर्शन, अणुव्रत और महाव्रत का पालन ही सारभूत है, ऐसा समझकर हम सभी को सम्यग्दर्शन

सहित अणुव्रत अथवा महाव्रत ग्रहण करके मनुष्यपर्याय को सफल करना चाहिए तथा यह भावना भी करनी चाहिए कि मुझे कभी भी तिर्यंचगति में जन्म न लेना पड़े, यही इस ग्रंथ के पठन का सार है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. ४९ से ५१)

३७. सिद्धान्त नवनीत

तिर्यंच अणुव्रती १६वें स्वर्ग तक जाते हैं

उपपादपरिणतासंयतसम्यग्दृष्टिभिः षट् चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, तिर्यगसंयत-सम्यग्दृष्टीनां शुक्ललेश्यया सह देवेषूपपादोपलंभात्। स्वस्थान-विहार-वेदना-कषाय-वैक्रियिकपरिणत शुक्ललेश्या-संयतासंयतैः त्रिलोकानामसंख्यातभागः, तिर्यग्लोकस्य संख्यातभागः, सार्धद्वयद्वीपादसंख्यातगुणः, मारणान्तिकपरिणतैः षट् चतुर्दशभागाः स्पृष्टाः, तिर्यक् संयतासंयतानां शुक्ललेश्यया सह अच्युतकल्पे उपपादोपलम्भात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टेः मारणान्तिकोपपादौ न स्तः।

उपपादपदपरिणत शुक्ललेश्या वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों ने कुछ कम छह बटे चौदह भाग (६/१४) स्पर्श किए हैं क्योंकि तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का शुक्ललेश्या के साथ देवों में उपपाद पाया जाता है। स्वस्थानस्वस्थान, विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिकपदपरिणत शुक्ललेश्या वाले संयतासंयतों ने सामान्यलोक आदि तीन लोकों का असंख्यातवां भाग, तिर्यग्लोक का संख्यातवां भाग और अढ़ाईद्वीप से असंख्यातगुणा क्षेत्र स्पर्श किया है। मारणान्तिक पद परिणत उक्त जीवों ने छह बटे चौदह (६/१४) भाग स्पर्श किए हैं क्योंकि तिर्यंच संयतासंयतों का शुक्ललेश्या के साथ अच्युतकल्प में उपपाद पाया जाता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. १२८)

३८. सिद्धान्त नवनीत

तिर्यंच की आयु बांध लेने पर क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंख्यात द्वीपों के भोगभूमियों में उत्पन्न हो जाते हैं

पूर्वं तिर्यग्बद्धायुष्काः मनुष्याः क्षायिकसम्यग्दृष्टयः असंख्यातद्वीपेषु तिर्यक्षु उत्पद्यन्ते। तत्र भोगभूमिभ्यः निर्गत्य सौधर्मैशानकल्पयोः उत्पद्यमानक्षायिकसम्यग्दृष्टिस्पर्शितक्षेत्रं मनुष्येषूत्पद्यमानक्षायिकसम्यग्दृष्टिस्पर्शितक्षेत्रं च गृहीत्वा लभ्यते।

तिर्यंचों में उत्पन्न होने वाले बद्धायुष्क अर्थात् जिन्होंने पहले तिर्यंच आयु का बंध कर लिया है ऐसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य असंख्यात द्वीपों में तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं

वहाँ भोगभूमि से मरण करके सौधर्म और ईशान कल्पों में ही उत्पन्न होते हैं उन क्षायिक सम्यग्दृष्टियों से स्पर्शित क्षेत्र को तथा वहाँ से चयकर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टियों के स्पर्शित क्षेत्र को ग्रहण करके तिर्यग्लोक के संख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्शनक्षेत्र पाया जाता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. १३४)

३९. सिद्धान्त नवनीत

सासादन सम्यग्दृष्टी छठे नरक से निकलकर मध्यलोक में जन्म लेते हैं

अनाहारकेषु सासादनस्य षष्ठपृथिवीतो निःसृत्य तिर्यग्लोके प्रादुर्भावात् पंचरज्जवः, अच्युतादागत्य तिर्यग्लोके प्रादुर्भावात् षडित्येकादश।

अनाहारक सासादनसम्यग्दृष्टि छठी नरक पृथिवी से निकलकर मध्यलोक में उत्पन्न होते हैं। छठे नरक से लेकर मध्य लोक तक पांच राजू है तथा सासादनसम्यग्दृष्टि १६वें अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर मध्यलोक में उत्पन्न होते हैं १६वें स्वर्ग से मध्यलोक छह राजु है अतः दोनों को मिलाने से ग्यारह राजू स्पर्श होता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. १४५)

४०. सिद्धान्त नवनीत

स्वर्गों में यहीं के दिन रात्रि आदि से काल जाना जाता है एवं आष्टान्हिक आदि पर्व मनाये जाते हैं

देवलोके कालाभावे तत्र कथं काल व्यवहारः?

न, अत्रस्थेनैव कालेन तेषां व्यवहारात्।

शंका — देवलोक में तो दिन-रात्रिरूप काल का अभाव है, फिर वहाँ पर काल का व्यवहार कैसे होता है?

समाधान — नहीं, क्योंकि, यहाँ के काल से देवलोक में काल का व्यवहार होता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. १५६)

४१. सिद्धान्त नवनीत

विवर्द्धनकुमार आदि का नामोल्लेख

अभव्यसिद्धिकजीवानां प्रतीत्य मिथ्यात्वकालः अनाद्यपर्यवसितः। अभव्य-मिथ्यात्वस्य आदिमध्यान्ता-भावात्। भव्यसिद्धिकमिथ्यात्वकालः अनादिः सपर्यवसितः, यथा वर्द्धनकुमारस्य मिथ्यात्वकालः। अन्यैको मिथ्यात्वकालः सादिः सपर्यवसितः, यथा नारायणकृष्णमिथ्यात्वकालः। तत्र यः सः सादिसपर्यवसितो मिथ्यात्वकालस्तस्यायं निर्देशः।

अभव्यसिद्धिक जीवों की अपेक्षा उनका मिथ्यात्वकाल अनादि-अनन्त है, क्योंकि अभव्य जीव के मिथ्यात्व का आदि, मध्य और अन्त का अभाव पाया जाता है। भव्यसिद्धिक जीव के मिथ्यात्व का काल एक तो अनादि और सान्त होता है, जैसा कि वर्द्धनकुमार का मिथ्यात्व काल तथा एक और प्रकार का भव्यसिद्धिक जीवों का मिथ्यात्व काल है, जो कि सादि और सान्त होता है, जैसे—कृष्ण का मिथ्यात्वकाल। उनमें से जो सादि और सान्त मिथ्यात्वकाल होता है उसका यह निर्देश है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. १५८-१५९)

४२. सिद्धान्त नवनीत

अप्रमत्तसंयत मुनि तृतीयगुणस्थान प्राप्त नहीं करते

अप्रमत्तसंयतः सम्यग्मिथ्यात्वं किमिति न गच्छति?

न, तस्य संक्लेशविशुद्धिभ्यां सह प्रमत्तापूर्वकरणगुणस्थाने मुक्त्वा गुणस्थानांतरगमनाभावात्। अप्रमत्तस्य मृतस्यापि असंयतसम्यग्दृष्टिव्यतिरिक्त-गुणस्थानांतरगमनाभावात्।

शंका—यहाँ पर अप्रमत्तसंयत जीव को सम्यग्मिथ्यात्व को क्यों नहीं प्राप्त कराया?

समाधान—नहीं, क्योंकि यदि अप्रमत्तसंयत जीव के संक्लेश की वृद्धि हो, तो प्रमत्तसंयत गुणस्थान को और यदि विशुद्धि की वृद्धि हो, तो अपूर्वकरण गुणस्थान को छोड़कर दूसरे गुणस्थान में गमन का अभाव है। यदि अप्रमत्तसंयत जीव का मरण भी हो, तो असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान को छोड़कर दूसरे गुणस्थानों में गमन नहीं होता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. १७५)

४३. सिद्धान्त नवनीत

असंयत सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्टकाल

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।।१५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः प्रमत्तोऽप्रमत्तो वा चतुर्णामुपशामकानामेकतरो वा समयोन- त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुःस्थितिकेषु अनुत्तरविमानवासिदेवेषु उपपन्नः। एवं असंयमसहितसम्यक्त्वस्य आदिर्जातः। ततः च्युत्वा पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। तत्र असंयतसम्यग्दृष्टिः भूत्वा तावत् स्थितः यावत् अंतर्मुहूर्तमात्रायुष्कं शेषमिति।**

ततोऽप्रमत्तभावेन संयमं प्रतिपन्नः (१)। ततः प्रमत्ताप्रमत्तसहस्रपरावर्तं कृत्वा (२) क्षपकश्रेणिप्रायोग्य-विशुद्ध्या विशुद्धः अप्रमत्तो जातः (३)। अपूर्वक्षपकः (४) अनिवृत्तिक्षपकः (५) सूक्ष्मसांपरायक्षपकः (६) क्षीणकषायः (७) सयोगी (८) अयोगी (९) भूत्वा सिद्धो जातः। एतैः नवभिः अंतर्मुहूर्तैः ऊनपूर्वकोटिकालेन अतिरिक्तानि समयोनत्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि असंयतसम्यग्दृष्टेः उत्कृष्टकालो भवति।

असंयतसम्यग्दृष्टि जीव का उत्कृष्टकाल सातिरेक तेतीस सागरोपम है।।१५।।

एक प्रमत्तसंयत अथवा अप्रमत्तसंयत अथवा चारों उपशामकों में से कोई एक उपशामक जीव एक समय कम तेतीस सागरोपम आयु कर्म की स्थिति वाले अनुत्तर विमानवासी देवों में उत्पन्न हुआ और इस प्रकार असंयमसहित सम्यक्त्व की आदि हुई। इसके पश्चात् वहाँ से च्युत होकर पूर्वकोटि वर्ष की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर वह अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु के शेष रह जाने तक असंयतसम्यग्दृष्टि होकर रहा। तत्पश्चात् अप्रमत्तभाव से संयम को प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान में सहस्रों परिवर्तन करके (२), क्षपकश्रेणी के प्रायोग्य विशुद्धि से विशुद्ध अप्रमत्त हुआ (३), पुनः अपूर्वकरणक्षपक (४), अनिवृत्तिकरणक्षपक (५), सूक्ष्मसाम्परायक्षपक (६), क्षीणकषायवीतराग-छद्मस्थ (७), सयोगिकेवली (८), और अयोगिकेवली (९), होकर के सिद्ध हो गया। इन नौ अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटि काल से अधिक तेतीस सागरोपम असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट काल होता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. १७८-१७९)

४४. सिद्धान्त नवनीत

सम्मूर्च्छन तिर्यंच का संयतासंयत में उत्कृष्टकाल

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।।१८।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा अष्टाविंशतिप्रकृतिसत्त्वयुतः**

मिथ्यादृष्टिः संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यक्संमूर्छिमपर्याप्तेषु मत्स्य-कच्छप-मंडूकादिषु उत्पन्नः। सर्वलघु-अंतर्मुहूर्तकालेन सर्वाभिः पर्याप्तिभिः पर्याप्तको जातः (१)। विश्रान्तः (२) विशुद्धो (३) भूत्वा संयमासंयमं प्रतिपन्नः। पूर्वकोटिकालं संयमासंयमं अनुपाल्य मृतः, सौधर्मादि-आरणाच्युतान्तेषु देवेषु उत्पन्नः। नष्टः संयमासंयमः। एवं आदित्रि-अंतर्मुहूर्तैः ऊनं पूर्वकोटिप्रमाणं संयमासंयमकालो भवति।

संयतासंयत जीव का उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है।।१८।।

एक तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव, संज्ञी पंचेन्द्रिय और पर्याप्तक ऐसे संमूर्च्छन तिर्यंच मच्छ, कच्छप, मेंढक आदि में उत्पन्न हुआ, सर्व लघु अन्तर्मुहूर्त काल द्वारा सर्व पर्याप्तियों से पर्याप्तपने को प्राप्त हुआ (१)। पुनः विश्राम लेता हुआ (२), विशुद्ध हो करके (३), संयमासंयम को प्राप्त हुआ। वहाँ पर पूर्वकोटी काल तक संयमासंयम को पालन करके मरा और सौधर्मकल्प आदि से आरण अच्युतपर्यन्त कल्पों के देवों में उत्पन्न हुआ। तब संयमासंयम नष्ट हो गया। इस प्रकार आदि के तीन अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटिप्रमाण संयमासंयम का काल होता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. १८०-१८१)

४५. सिद्धान्त नवनीत

सयोगीकेवली भगवान का जघन्य व उत्कृष्टकाल

सजोगिकेवली केवचिरं कालादो होंति? णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा।।३०।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**त्रिष्वपि कालेषु येन एकोऽपि समयः सयोगिविरहितः नास्ति, तेन सर्वकालत्वं युज्यते।**

एकजीवापेक्षया जघन्यकालकथनाय सूत्रमवतार्यते—

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।३१।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**एकः क्षीणकषायः सयोगी भूत्वा अंतर्मुहूर्तं स्थित्वा समुद्घातं कृत्वा पश्चात् योगनिरोधं कृत्वा अयोगी जातः। एवं सयोगिनः जघन्यकालप्ररूपणा एकजीवमाश्रित्य गता।**

उत्कृष्टकालनिरूपणाय सूत्रमवतरति—

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।।३२।।

सिद्धान्तचिन्तामणि टीका—**एकः क्षायिकसम्यग्दृष्टिः देवो वा नारको वा पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। सप्तमासे गर्भे स्थित्वा गर्भप्रवेशनजन्मना अष्टवार्षिको जातः। अप्रमत्तभावेन संयमं प्रतिपन्नः (१)। पुनः प्रमत्ताप्रमत्तपरावर्तसहस्रं कृत्वां**

(२) अप्रमत्तस्थाने अधः प्रवृत्तकरणं कृत्वा (३) अपूर्वकरणः (४) अनिवृत्तिकरणः (५) सूक्ष्मक्षपकः (६) क्षीणकषायः (७) भूत्वा सयोगी जातः। अष्टवर्षैः सप्तभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनपूर्वकोटिकालं विहरमाणः अयोगी जातः (८)। एवं अष्टभिः वर्षैः अष्टभिरन्तर्मुहूर्तश्च ऊनपूर्वकोटिप्रमाणं सयोगिकेवलिकालं भवति।

तात्पर्यमेतत्—सयोगिकेवलिनां भगवतां यः कालः स एव महिमावान् एतज्ज्ञात्वा मिथ्यात्वासंयम-कषायादिकालं परिहृत्य स्वात्मनि स्थिरीभवितुं प्रयत्नो विधेयः। तथा च श्रीशुभचन्द्राचार्यवाक्यं प्रत्यहं स्मर्तव्यं—

''क्षणिकत्वं वदन्त्यार्या घटीघातेन भूभृताम्।
क्रियतामात्मनः श्रेयः गतेयं नागमिष्यति[२७]।।

किञ्च—यत्कालो व्यतीतः, स त्रैलोक्यसम्पद्भिरपि न प्रत्यागच्छति, इत्थं अमूल्यं कालं विज्ञाय एकापि कालस्य कलिका प्रमादेन न गमयितव्या।

सयोगिकेवली जिन कितने काल तक होते हैं? नाना जीवों की अपेक्षा सर्वकाल होते हैं।।३०।।

हिन्दी टीका—चूँकि तीनों ही कालों में एक भी समय सयोगिकेवली भगवान् से विरहित नहीं है, इसलिए सर्वकालपना बन जाता है।

अब एक जीव की अपेक्षा जघन्यकाल बतलाने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

एक जीव की अपेक्षा सयोगिकेवली का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त है।।३१।।

एक क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ संयत मुनि सयोगिकेवली होकर अन्तर्मुहूर्त काल रहकर समुद्घात कर, पीछे योगनिरोध करके अयोगिकेवली हुआ। इस प्रकार सयोगिजिन के जघन्य काल की प्ररूपणा एक जीव का आश्रय करके कही गई है।

अब उत्कृष्ट काल का निरूपण करने हेतु सूत्र अवतरित होता है—

एक जीव की अपेक्षा सयोगिकेवली का उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्व कोटि है।।३२।।

एक क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव अथवा नारकी जीव पूर्वकोटी की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। सात मास गर्भ में रह करके गर्भ में प्रवेश करने वाले जन्म दिन से आठ वर्ष का हुआ, आठ वर्ष का होने पर अप्रमत्तभाव से संयम को प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतगुणस्थान संबंधी सहस्रों परिवर्तनों को करके (२), अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में अधःप्रवृत्तकरण को करके (३), क्रमशः अपूर्वकरण (४), अनिवृत्तिकरण (५), सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (६), और क्षीणकषायवीतराग छद्मस्थ होकर (७), सयोगिकेवली हुआ। पुनः वहाँ पर उक्त आठ वर्ष और सात अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटी काल प्रमाण विहार करके अयोगिकेवली हुआ (८), इस प्रकार आठ वर्ष और आठ अन्तर्मुहूर्तों से कम पूर्वकोटि वर्षप्रमाण सयोगिकेवली का काल होता है।

तात्पर्य यह है कि सयोगिकेवली भगवन्तों का जो काल है उसकी अचिन्त्य महिमा है ऐसा जानकर मिथ्यात्व, असंयम, कषाय आदि काल को (नष्ट) समाप्त करके अपनी शुद्ध आत्मा में स्थिर होने का प्रयत्न करना चाहिए तथा श्रीशुभचन्द्राचार्य के ये वाक्य प्रतिक्षण स्मरण करना चाहिए।

श्लोकार्थ—राजाओं के यहाँ जो घंटा बजता है, वह कहता है कि हे आर्यों! समय क्षणिक है। अतः शीघ्र ही आत्मा का कल्याण करो, क्योंकि बीती हुई काल की कला वापस नहीं आएगी।

अर्थात् जो काल बीत गया है, वह तीनों लोकों की सम्पत्ति देने पर भी पुनः वापस नहीं प्राप्त हो सकता है इस प्रकार समय की अमूल्यता जानकर काल-समय की एक भी घड़ी (पल) प्रमाद में व्यर्थ नहीं गंवाना चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. १८६ से १८८ तक)

४६. सिद्धान्त नवनीत

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंच का उत्कृष्टकाल

एको मनुष्यो बद्धतिर्यगायुष्कः सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा देवकुरूत्तरकुरुभोगभूमितिरश्चोः उत्पन्नः। त्रीणि पल्योपमानि तत्र सम्यक्त्वेन सह स्थित्वा मृतो देवो जातः। एवं तिर्यक्षु असंयतसम्यग्दृष्टेः उत्कृष्टकालः प्ररूपितः।

बद्ध तिर्यगायुष्क एक मनुष्य सम्यक्त्व को ग्रहण करके और दर्शनमोहनीय का क्षय कर, देवकुरु या उत्तरकुरु के तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर तीन पल्योपम कालप्रमाण सम्यक्त्व के साथ रहकर मरा और देव हो गया। इस प्रकार से तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्टकाल रहा।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. १९९)

४७. सिद्धान्त नवनीत

संयतासंयत तिर्यंच का उत्कृष्टकाल

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणा।।५६।।

एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा मिथ्यादृष्टिः अष्टाविंशतिप्रकृतिसत्त्वसहितः संज्ञिपंचेन्द्रिय-तिर्यक्संमूर्छिम-पर्याप्तमंडूक-मत्स्य-कच्छपादिषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तकः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) संयमासंयमं प्रतिपन्नः। एतत्त्रिभिरन्तर्मुहूर्तैः ऊनपूर्वकोटिकालं संयमासंयमं अनुपाल्य मृतो देवो जातः।

एक जीव की अपेक्षा संयतासंयत तिर्यंच का उत्कृष्टकाल कुछ कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है।।५६।।

मोहनीयकर्म की अट्ठाईस कर्मप्रकृतियों की सत्ता वाला एक तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि संज्ञी, पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक मेंढक, मछली, कछुआ आदि तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होता हुआ (१), विश्राम लेकर (२) और विशुद्ध होकर (३) संयमासंयम को प्राप्त हुआ। इन तीन अन्तर्मुहूर्तों से कर्म पूर्वकोटि कालप्रमाण संयमासंयम को परिपालन करके मरा और देव हो गया।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २००)

४८. सिद्धान्त नवनीत

पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टि का उत्कृष्टकाल

उक्कस्सं तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण अब्भहियाणि।।५९।।

एको देवो नारको मनुष्यो वा अर्पितपंचेन्द्रियतिर्यक्व्यतिरिक्ततिर्यङ् वा अर्पितपंचेन्द्रियतिर्यक्षु उत्पन्नः। संज्ञि-स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदेषु क्रमेण अष्टाष्टपूर्वकोटि-कालप्रमाणं भ्रमित्वा असंज्ञि-स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदेषु अपि एवं चैव अष्टाष्टपूर्वकोटिप्रमाणं परिभ्रम्य ततः पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तकेषु उत्पन्नः। तत्रान्तर्मुहूर्तं स्थित्वा पुनः पंचेन्द्रियतिर्यगसंज्ञि-पर्याप्तकेषु उत्पद्य तत्रतनस्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदेषु पुनरपि अष्टाष्टकोटिप्रमाणं परिभ्रमणं कृत्वा पश्चात् संज्ञिपंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तस्त्री-नपुंसकवेदयोः अष्टाष्टपूर्वकोटिप्रमाणं पुरुषवेदे सप्तपूर्वकोटिप्रमाणं भ्रमित्वा ततः देवकुरु-उत्तरकुरुतिर्यक्षु पूर्वायुर्वशेन स्त्रीवेदेषु वा पुरुषवेदेषु वा उत्पन्नः तत्र त्रीणि पल्योपमानि जीवित्वा मृतो देवो जातः।

एताः पंचनवतिपूर्वकोट्यः पूर्वकोटिद्वादशपृथक्त्वसंज्ञिताः अतः आसां पूर्वकोटिपृथक्त्वव्यपदेशः सूत्रनिर्दिष्टः न युज्यते?

नैष दोषः, अस्य पृथक्त्वशब्दस्य वैपुल्यवाचित्वात्।

द्वादशानां पूर्वकोटिपृथक्त्वानां कथमेकत्वं?

न, जातिमुखेन सहस्राणामपि एकत्वविरोधाभावात्। विशेषेण तु—

पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तकेषु सप्तचत्वारिंशत्पूर्वकोटिप्रमाणं भ्रामयित्वा पश्चात् त्रिपल्योपमिकेषु तिर्यक्षु उत्पादयितव्यः।

उक्त तीनों प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिथ्यादृष्टियों का उत्कृष्टकाल पूर्वकोटि पृथक्त्व से अधिक तीन पल्योपम है।।५९।।

कोई एक देव, नारकी, मनुष्य अथवा अर्पित-विवक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यंच से विभिन्न अन्य तिर्यंच जीव, विवक्षित पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर संज्ञी स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदों में क्रम से आठ-आठ पूर्वकोटि काल प्रमाण भ्रमण करके असंज्ञी स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदों में भी इसी प्रकार से आठ-आठ पूर्वकोटि कालप्रमाण परिभ्रमण करके, इसके पश्चात् पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर अन्तर्मुहूर्त रहकर पुनः पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंज्ञी पर्याप्तकों में उत्पन्न होकर स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेदी उन तिर्यंचों में फिर भी आठ-आठ पूर्वकोटियों तक परिभ्रमण करके, पीछे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तक स्त्री और नपुंसक वेदियों में आठ-आठ पूर्वकोटियाँ तथा पुरुषवेदियों में सात पूर्वकोटियाँ भ्रमण करके उसके पश्चात् देवकुरु अथवा उत्तरकुरु के तिर्यंचों में पूर्व बांधी हुई आयु के वश से स्त्रीवेदियों में अथवा पुरुषवेदियों में उत्पन्न हुआ। वहाँ पर तीन पल्योपम तक जीवित रहकर मरा और देव हो गया।

शंका—ये पूर्व में कही गई पंचानवे पूर्वकोटियां पूर्वकोटिद्वादशपृथक्त्व संज्ञारूप हैं, इसलिए इनकी पूर्वकोटिपृथक्त्व ऐसी संज्ञा नहीं बनती है?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यह पृथक्त्व शब्द वैपुल्यवाची है, (इसलिए कोटिपृथक्त्व से यथासंभव विवक्षित अनेक कोटियाँ ग्रहण की जा सकती हैं।)

शंका—बारह पूर्वकोटि पृथक्त्वों में एकपना कैसे बन सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि जाति के मुख से अर्थात् जाति की अपेक्षा सहस्रों के भी एकत्व होने में विरोध का अभाव है।

विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकों में सैंतालीस पूर्वकोटियों तक भ्रमण कराके पीछे तीन पल्योपम वाले तिर्यंचों में उत्पन्न कराना चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २०१-२०२)

४९. सिद्धान्त नवनीत

लब्ध्यपर्याप्तक में स्त्रीवेद कैसे संभव है ?

लब्ध्यपर्याप्तकेषु कथं स्त्रीवेदस्य संभवः?

न, लब्ध्यपर्याप्त-स्त्रीवेदयोः अन्योन्यविरोधाभावात्।

पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु पंचदशपूर्वकोटिकालप्रमाणं भ्रामयित्वा पश्चात् देवकुरु-उत्तरकुरुभोगभूम्योः उत्पादयितव्यः।

कुतः?

वेदान्तरसंक्रान्तेरभावात्। नास्यन्यः कोऽपि विशेषोऽत्र।

शंका—लब्ध्यपर्याप्तकों में स्त्रीवेद कैसे संभव है?

समाधान—नहीं, क्योंकि लब्ध्यपर्याप्त और स्त्रीवेद इन दोनों अवस्थाओं में परस्पर कोई विरोध नहीं है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियों में पन्द्रह पूर्वकोटियों तक भ्रमण कराके पश्चात् देवकुरु और उत्तरकुरु में उत्पन्न कराना चाहिए।

प्रश्न—ऐसा क्यों?

उत्तर—क्योंकि, वेद-परिवर्तन का अभाव है। इसके सिवाय अन्य कोई विशेषता नहीं है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २०२)

५०. सिद्धान्त नवनीत

सम्यग्दृष्टि-भोगभूमिज तिर्यंच और तिर्यंचिनी का उत्कृष्टकाल एवं भोगभूमि में दो मास गर्भकाल है

बद्धतिर्यगायुष्कस्य मनुष्यस्य सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा देवोत्तरकुरुभोगभूम्योः पंचेन्द्रियतिर्यक्षु उत्पद्य आत्मनः आयुस्थितिमनुपाल्य देवेषु उत्पन्नस्य संपूर्णत्रिपल्योपममात्रं असंयमसहित-सम्यक्त्वकालोपलम्भात्।

पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु देशोनत्रिपल्योपमानि। तिरश्चः मनुष्यस्य वा अष्टाविंशति-प्रकृतिसत्त्वसहितमिथ्यादृष्टेः देवकुरु-उत्तरकुरुपंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु उत्पद्य द्विमासपर्यंतं गर्भे स्थित्वा जायमानस्य मुहूर्तपृथक्त्वेन विशुद्धो भूत्वा वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपद्य मुहूर्तपृथक्त्वाधिकद्विमासहीनत्रिपल्योपमप्रमाणं सम्यक्त्वमनुपाल्य देवेषूत्पन्नस्य देशोनत्रिपल्योपममात्रसम्यक्त्वकालोपलंभात्।

क्योंकि, बद्धतिर्यगायुष्क मनुष्य के सम्यक्त्व को ग्रहण करके, दर्शनमोहनीय का क्षपण कर, देवकुरु या उत्तरकुरु के पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में उत्पन्न होकर, अपनी आयु स्थिति को परिपालन कर, देवों में उत्पन्न होने वाले जीव के तो संपूर्ण तीन पल्योपम मात्र असंयमसहित सम्यक्त्व का काल पाया जाता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियों में कुछ कम तीन पल्योपम काल है। क्योंकि मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाले तिर्यंच अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव के देवकुरु अथवा उत्तरकुरु के पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियों में उत्पन्न होकर और दो मास गर्भ में रहकर जन्म लेने वाले और मुहूर्तपृथक्त्व से विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्व को प्राप्त करके मुहूर्तपृथक्त्व से अधिक दो मास कम

तीन पल्योपम तक सम्यक्त्व को अनुपालन करके देवों में उत्पन्न होने वाले जीव के कुछ कम तीन पल्योपम सम्यक्त्व का काल पाया जाता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २०४)

५१. सिद्धान्त नवनीत

एकेन्द्रिय का उत्कृष्टकाल

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं।।१०९।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**द्वीन्द्रियादिषु एकतरः कश्चिद् जीवः एकेन्द्रियेषु उत्पद्य अतिबहुकं कालं यदि तिष्ठति तर्हि आवलिकायाः असंख्यातभागमात्राणि चैव पुद्गलपरिवर्तनानि तिष्ठति।**

कुतः?

एतस्मात् उपरि अवस्थानशक्तेरभावात्।

एक जीव की अपेक्षा एकेन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट काल अनंतकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है।।१०९।।

हिन्दी टीका—एकेन्द्रियों से भिन्न अन्य कोई जीव एकेन्द्रियों में उत्पन्न होकर यदि अत्यधिक काल रहता है, तो आवली के असंख्यातवें भागमात्र ही पुद्गलपरिवर्तन रहता है।

प्रश्न—क्यों?

उत्तर—क्योंकि इस उक्त काल से ऊपर एकेन्द्रियों में रहने की शक्ति का अभाव है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २२६-२२७)

५२. सिद्धान्त नवनीत

बादर एकेन्द्रिय का जघन्यकाल

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।।११४।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**क्षुद्रभवग्रहणं संख्यातावलिमात्रं, एकं मुहूर्तं षट्षष्टिसहस्र-त्रिशत-षट्त्रिंशद्रूपमात्रखण्डानि कृत्वा एकखण्डमात्रत्वात्। एतदपि कथं ज्ञायते?**

तिण्णि सया छत्तीसा, छावट्ठि सहस्स चेव मरणाइं।
अंतोमुहुत्तकाले, तावदिया होंति खुद्दभवा।।१।।

इति गाथासूत्रादेव ज्ञायते।

एक जीव की अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों का जघन्य काल अंतर्मुहूर्त है।।११४।।

क्षुद्रभवग्रहण का काल संख्यात आवली प्रमाण होता है, क्योंकि एक मुहूर्त का छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीसरूपप्रमाण खंड करने पर एक खंड प्रमाण क्षुद्रभव का काल होता है।

शंका—यह कैसे जाना है?

समाधान—(गाथार्थ)—एक अन्तर्मुहूर्त काल के छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीस मरण होते हैं, और इतने ही क्षुद्रभव होते हैं।।१।।

इस गाथासूत्र से जाना जाता है कि क्षुद्रभव का काल अन्तर्मुहूर्त का छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीसवां भाग है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २२९)

५३. सिद्धान्त नवनीत

क्षुद्रभवग्रहण का क्या स्वरूप है ?

उक्तलक्षणमुहूर्तमध्ये तावदेकेन्द्रियो भूत्वा कश्चिद् जीवः षट्षष्टिसहस्त्रद्वात्रिंशदधिक शतपरिमाणानि (६६१३२) जन्ममरणानि अनुभवति, तथा स एव जीवः तस्यैव मुहूर्तस्य मध्ये द्वित्रिचतुरिन्द्रियपंचेन्द्रियो भूत्वा यथासंख्यमशीतिषष्टि-चत्वारिंशत्-चतुर्विंशतिजन्ममरणान्यनुभवति। सर्वेऽप्येते समुदिताः क्षुद्रभवाः एतावन्त एव भवन्ति—६६३३६।

यदा यैवान्तर्मुहूर्तस्य मध्ये एतावन्ति जन्ममरणानि भवन्ति तदैकस्मिन्नुच्छ्वासे अष्टादश जन्ममरणानि लभ्यन्ते। तत्रैकस्य क्षुद्रभवसंज्ञा[२५]।''

प्रश्न—क्षुद्रभवग्रहण का क्या स्वरूप है?

उत्तर—पूर्व कथित लक्षण वाले अंतर्मुहूर्त के मध्य में कोई एकेन्द्रिय होकर छ्यासठ हजार एक सौ बत्तीस (६६१३२) बार जन्म मरण के दुःख का अनुभव करता है। वही जीव अंतर्मुहूर्त के मध्य में दो इन्द्रिय के अस्सी (८०), तीन इन्द्रिय के साठ (६०), चतुरिन्द्रिय के चालीस (४०) और पंचेन्द्रिय के चौबीस (२४) बार जन्म-मरण को प्राप्त होता है। इस प्रकार अंतर्मुहूर्त में होने वाले सारे जन्म-मरणों की गणना छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीस है।

जब एक अंतर्मुहूर्त में छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार जन्म-मरण होते हैं, तब एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण करता है। उसमें एक भव (जन्म) की क्षुद्रभव संज्ञा है। (षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २३०-२३१)

५४. सिद्धान्त नवनीत

बादर त्रस जीवों का उत्कृष्टकाल

उक्कस्सेण संखेज्जाणि वाससहस्साणि।।११५।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**पृथिवीकायिकेषु द्वाविंशतिवर्षसहस्राणि उत्कृष्टायुः सूत्रसिद्धमस्ति।**

बादरैकेन्द्रियपर्याप्तभवस्थितिः असंख्यातवर्षमात्रा किं न भवति?

न भवति, तत्रासंख्यातवारं एकजीवस्य उत्पत्तेरसंभवात्।

यदि कश्चिद् जीवः बादरैकेन्द्रियेषु उत्कृष्टसंख्यातप्रमाणवारं अथवा तस्य संख्यातभागमात्रवारं उत्पद्यते तर्हि असंख्यातवर्षाणि भवन्ति?

न भवन्ति, संख्यातानि वर्षसहस्राणि इति सूत्रस्यान्यथानुपपत्तेः, अतः तत्प्रायोग्यसंख्यातवारोत्पत्तिसिद्धेः।

अविवक्षितः कश्चिद् जीवः बादरैकेन्द्रियपर्याप्तकेषु संख्यातानि वर्षसहस्राणि उत्कृष्टेन तत्र भ्रमित्वा पुनः अविवक्षितेषु निश्चयेन उत्पद्यते इति भणितं भवति।

एक जीव की अपेक्षा बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों का उत्कृष्ट काल संख्यात हजार वर्ष है।।११५।।

हिन्दी टीका—पृथिवीकायिक जीवों में उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष प्रमाण होती है ऐसा सूत्र से सिद्ध है।

प्रश्न—बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों की भवस्थिति असंख्यातवर्ष प्रमाण क्यों नहीं होती है?

उत्तर—नहीं होती है, क्योंकि उनमें असंख्यातबार एक जीव की उत्पत्ति असंभव है।

शंका—यदि कोई जीव बादर एकेन्द्रियों में उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण बार अथवा उसके संख्यातवें भागप्रमाण बार उत्पन्न होता है, तो भी असंख्यात वर्ष तो हो ही जाते हैं?

समाधान—नहीं होते हैं, क्योंकि बादर एकेन्द्रिय जीवों का उत्कृष्ट काल 'संख्यात हजार वर्ष प्रमाण हैं' यह सूत्र वचन नहीं बन सकता है। इसलिए तत्प्रायोग्य-उनके योग्य संख्यातबार ही बादर एकेन्द्रियों की उत्पत्ति सिद्ध होती है।

अविवक्षित कोई जीव बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकों में उत्पन्न होकर संख्यात-सहस्र वर्ष प्रमाण अधिक से अधिक काल तक उनमें परिभ्रमण करके पुनः अविवक्षित जीवों में निश्चय से उत्पन्न होता है,यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २३१)

५५. सिद्धान्त नवनीत

त्रसराशि में रहने का उत्कृष्टकाल

न, क्षुद्रभवग्रहणापेक्षया मिथ्यात्वस्य जघन्यकालस्य स्तोकत्वात्।

उत्कृष्टकालेन कश्चिदेको जीवः स्थावरकायादागत्य सामान्यत्रसकायिकेषु उत्पन्नः,स पूर्वकोटि-पृथक्त्वाभ्यधिकद्विसागरसहस्रे तत्र भ्रमित्वा स्थावरकायं गतः। इतश्च कश्चिद् जीवः स्थावरकायादागत्य द्विसहस्रसागरौ परिभ्रम्य स्थावरं गतः। एतस्मादुपरि तत्र त्रसकायिकेषु अवस्थानसंभवाभावात्।

उत्कृष्टकाल की अपेक्षा कोई एक जीव स्थावरकाय से आकर एक तो सामान्य त्रसकायिक जीवों में और दूसरा त्रसकायिक पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ। उनमें जो सामान्य त्रसकायिक जीवों में उत्पन्न हुआ, वह जीव पूर्वकोटीपृथक्त्व से अधिक दो हजार सागरोपम काल उनमें परिभ्रमण करके स्थावरकाय को प्राप्त हुआ तथा दूसरा कोई जीव भी स्थावरकाय से आकर दो हजार सागरोपमप्रमाण उनमें परिभ्रमण करके स्थावरकाय में चला गया, क्योंकि इसके ऊपर त्रसकाय में रहना संभव नहीं है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २४७)

५६. सिद्धान्त नवनीत

अप्रमाद और व्याघात एक साथ नहीं होते

अप्रमत्तसंयतस्य किमर्थं व्याघातो नास्ति?

अप्रमाद-व्याघातयोः सहानवस्थानलक्षणविरोधात्।

शंका—अप्रमत्तसंयत के व्याघात किसलिए नहीं है?

समाधान—क्योंकि, अप्रमाद और व्याघात इन दोनों का सहानवस्थालक्षण विरोध है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २५३)

५७. सिद्धान्त नवनीत

औदारिकमिश्रकाययोग में सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्टकाल

सर्वार्थसिद्धिविमानवासिदेवस्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमानि सुखलालितस्य प्रमुक्तदुःखस्य मानुषगर्भे विष्ठा-मूत्रान्त्र-पित्त-श्लेष्मा-वसा-सिंघाण-रक्त-शुक्रापूरिते अतिदुर्गन्धे कुत्सितरसे दुर्वर्णे दुःस्पर्शे चर्मकारकुण्डोपमे उत्पन्नस्य, तत्र मंदो योगो

भवतीति आचार्यपरंपरागतोपदेशात्[२९]। मंदयोगेन स्तोकान् पुद्गलान् गृण्हतः जीवस्य औदारिकमिश्रकालं दीर्घं भवतीति कथितं भवति।

अथवा योगोऽत्र महान् चैव भवतु, योगवशेन बहुकाः पुद्गलाः आगच्छन्तु, तर्हि अपि अस्य जीवस्य अपर्याप्तकालं दीर्घं भवति, विलासेन दूषितस्य जीवस्य लघुकालेन पर्याप्तिपूर्णस्य असामर्थ्यत्वात्।

तेतीस सागरोपमकाल तक सुख से लालित-पालित हुए तथा दुःखों से रहित सर्वार्थसिद्धिविमानवासी देव के विष्टा, मूत्र, आतड़ी, पित्त, खारिस (कफ) चर्वी, नासिका मल, लोहू और शुक्र व्याप्त, अति दुर्गन्धित, कुत्सितरस, दुर्वर्ण और दुष्ट स्पर्श वाले चमार के कुंडके सदृश मनुष्य के गर्भ में उत्पन्न होने पर उसके विग्रहगति में तथा उसके पश्चात् भी मंदयोग होता है, इस प्रकार का आचार्य परम्परागत उपदेश है। मंदयोग से अल्प पुद्गलों को ग्रहण करने वाले जीव के औदारिक मिश्रकाययोग का काल दीर्घ होता है, यह अर्थ कहा गया है।

अथवा यहाँ पर चाहे योगकाल बड़ा ही रहा आवे और योग के वश से पुद्गल भी बहुत से आते रहें, तो भी उक्त प्रकार के जीव के अपर्याप्तकाल बड़ा ही होता है, क्योंकि विलास से दूषित जीव के शीघ्रतापूर्वक पर्याप्तियों के सम्पूर्ण करने में सामर्थ्य नहीं है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २६४)

५८. सिद्धान्त नवनीत

स्त्रीवेदी कुक्कुट मर्कट आदि का संयतासंयत काल एवं नपुंसकवेदी संयतासंयत का उत्कृष्टकाल

स्त्रीवेदे संयतासंयतस्य उत्कृष्टकालेऽस्ति विशेषः-एकः अष्टाविंशतिमोहनीय-कर्मप्रकृतिसत्त्वसहितः स्त्रीवेदेषु कुक्कुट-मर्कटादिषु उत्पद्य द्वौ मासौ गर्भे स्थित्वा निर्गत्य मुहूर्तपृथक्त्वस्योपरि सम्यक्त्वं संयमासंयमं वा युगपत् गृहीत्वा द्विमासमुहूर्तपृथक्त्वोन-पूर्वकोटिसंयमासंयमं अनुपाल्य मृतो देवो जातः इति।

पुनः ओघे—अंतर्मुहूर्तोन-पूर्वकोटिसंयतासंयत-उत्कृष्टकालः संज्ञिसन्मूर्च्छिम-पर्याप्तमत्स्य-कच्छप-मंडूकादिषु लब्धः, अत्र स्त्रीवेदे स न लभ्यते, सम्मूर्च्छिमेषु स्त्रीवेदाभावात्।

तात्पर्यमेतत्—देशोनपूर्वकोटिकालस्य द्वौ भेदौ स्तः, द्विमासमुहूर्तपृथक्त्वहीन-पूर्वकोटिवर्षकालः स्त्रीवेदे कुक्कुटमर्कटादिषु लभ्यते। अंतर्मुहूर्तोनपूर्वकोटिवर्षकालः सम्मूर्च्छिम-मत्स्य-कच्छपमंडूकादिषु नपुंसकवेदे जायते इमे तिर्यञ्चोऽपि स्वयंभूरमण-द्वीपसमुद्रवर्तिनश्चैव।

स्त्रीवेद में संयतासंयत गुणस्थान के उत्कृष्टकाल में कुछ विशेषता बतलाते हैं—

मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक जीव स्त्रीवेदी, कुक्कुट, मर्कट आदि में उत्पन्न होकर दो मास गर्भ में रहकर वहाँ से निकल करके मुहूर्त पृथक्त्व के ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयम को युगपत् ग्रहण करके दो मास और मुहूर्तपृथक्त्व से कम पूर्वकोटीवर्षप्रमाण संयमासंयम को परिपालन करके मरा और देव हो गया।

पुनः ओघकाल-गुणस्थान की समय प्ररूपणा में-जो अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटी वर्ष संयतासंयत का उत्कृष्टकाल कहा है, वह संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्त मच्छ—मछली, कच्छप—कछुवा, मंडूकादिकों—मेंढक आदि में पाया जाता है, वह यहाँ पर नहीं पाया जाता है क्योंकि सम्मूर्च्छन जन्म वाले जीवों में स्त्रीवेद का अभाव है।

तात्पर्य यह है कि देशोनपूर्वकोटि काल के दो भेद हैं—

१. द्विमासमुहूर्तहीनपूर्वकोटिवर्षकाल—यह स्त्रीवेदी कुक्कुट-मुर्गा, बंदर आदि में पाया जाता है।

२. अन्तर्मुहूर्तऊनपूर्वकोटिवर्षकाल—यह सम्मूर्च्छन जन्म वाले मत्स्य, कछुवा, मेंढक आदि नपुंसकवेदी जीवों में होता है।

ये तिर्यंच भी स्वयंभूरमणद्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र में जन्म लेने वाले हैं, क्योंकि अन्य स्थानों के जीवों में इस काल से गणना नहीं होती है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २८०)

५९. सिद्धान्त नवनीत

उत्पन्न के प्रथम समय क्रोधादि कषायों का उदय

एको मिथ्यादृष्टिः अन्यकषायेन स्थितः, तस्य कालक्षयेन क्रोधकषायी जातः। एकसमयं क्रोधेन सह दृष्टः। द्वितीयेन मृतः अन्यकषायेषु उत्पन्नः, एष मरणेन एकसमयः। क्रोधेन मृतः नरकगत्यां उत्पादयितव्यः, तत्रोत्पन्नजीवानां प्रथमं क्रोधोदयस्योपलम्भात्। मानेन मृतः मनुष्यगत्यां उत्पादयितव्यः, तत्रोत्पन्नानां प्रथमसमये मानोदयनियमोपदेशात्। मायया मृतः तिर्यग्गत्यां उत्पादयितव्यः, तत्रोत्पन्नानां प्रथमसमये मायोदय-नियमोपदेशात्। लोभेन मृतः देवगत्यां उत्पादयितव्यः, तत्रोत्पन्नानां प्रथमं चैव लोभोदयो भवतीति आचार्यपरंपरागतोपदेशात्।

एक कोई मिथ्यादृष्टि जीव अन्य कषाय में विद्यमान था। उस कषाय के कालक्षय से वह क्रोधकषायी हो गया। एक समय क्रोधकषाय के साथ दृष्टिगोचर हुआ पुनः द्वितीय समय में मरा और अन्य कषायों में उत्पन्न हुआ, यह मरण की अपेक्षा एक समय हुआ। क्रोधकषाय के साथ मरा हुआ जीव नरकगति में उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि नरकों में उत्पन्न होने वाले जीवों के सर्वप्रथम क्रोधकषाय का उदय पाया जाता है। मानकषाय से

मरा हुआ जीव मनुष्यगति में उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि मनुष्यों में उत्पन्न हुए जीवों के प्रथम समय में मानकषाय के उदय के नियम का उपदेश देखा जाता है। माया कषाय से मरे हुए जीव को तिर्यग्गति में उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि तिर्यंचों के उत्पन्न होने के प्रथम समय में मायाकषाय के उदय का नियम देखा जाता है। लोभकषाय से मरा हुआ जीव देवगति में उत्पन्न कराना चाहिए, क्योंकि उनमें उत्पन्न होने वाले जीवों के सर्वप्रथम लोभकषाय का उदय होता है, ऐसा आचार्य परम्परागत उपदेश है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २८७)

६०. सिद्धान्त नवनीत

संमूर्च्छन पंचेन्द्रिय के अवधिज्ञान हो सकता है

एकः अष्टाविंशतिसत्कर्मिजीवः संज्ञिसम्मूर्च्छिमपर्याप्तकेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तगतः विश्रम्य विशुद्धः संयमासंयमं प्रतिपद्य मतिश्रुतज्ञानी जातः। ततः अंतर्मुहूर्तं गत्वा अवधिज्ञानमुत्पादयति।

अवधिज्ञानी संयतासंयत गुणस्थानसंबंधी एक जीव के उत्कृष्टकाल में विशेषता है। वह इस प्रकार है-मोहकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला कोई एक जीव संज्ञी, सम्मूर्च्छिम, पर्याप्तकों में उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त हो, विश्राम करता हुआ, विशुद्ध होकर, संयमासंयम को प्राप्त कर, मति-श्रुतज्ञानी हो गया पुनः अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् अवधिज्ञान को उत्पन्न करता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. २९४)

६१. सिद्धान्त नवनीत

लब्ध्यपर्याप्तक पंचेन्द्रियों में भी चक्षुदर्शन नहीं है

निर्वृत्त्यपर्याप्तकानामिव लब्ध्यपर्याप्तकेषु चक्षुर्दर्शनं किं नोच्यते?

न, तस्मिन् भवे तत्र चक्षुर्दर्शनोपयोगाभावात्। किन्तु निर्वृत्त्यपर्याप्तानां तस्मिन् भवे नियमेन चक्षुर्दर्शनोपयोगोपलंभात्।

शंका— निर्वृत्यपर्याप्तकों के समान लब्ध्यपर्याप्तकों में चक्षुदर्शन क्यों नहीं कहा?

समाधान— नहीं, क्योंकि लब्ध्यपर्याप्तकों के उसी भव में चक्षुदर्शनोपयोग का अभाव पाया जाता है किन्तु निर्वृत्यपर्याप्तकों के तो उसी भव में नियम से ही चक्षुदर्शनोपयोग पाया जाता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. ३००)

६२. सिद्धान्त नवनीत

भव्यजीवों की राशि कभी समाप्त नहीं होगी

निर्वृत्तिं गच्छन्नपि न व्युच्छिद्यते भव्यराशिः इति कथमेतद् ज्ञायते?

तस्य अनन्तत्वात्। सः राशिरनन्त उच्यते, यः सत्यपि व्यये न समाप्यते, अन्यथा अनन्तव्यपदेशोऽनर्थको भवेत्। तस्मात् त्रिविधेन भव्यत्वेन भवितव्यमिति। न च सूत्रेण सह विरोधः, शक्तिमपेक्ष्य सूत्रे अनादिसान्तत्वोपदेशात्।

शंका— निवृत्ति (मोक्ष) को जाते हुए जीवों के भी नित्य व्ययात्मक भव्यराशि विच्छेद को प्राप्त नहीं होती है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान— क्योंकि, यह राशि अनन्त है और वही राशि अनन्त कही जाती है जो व्यय के होते रहने पर भी समाप्त नहीं होती है। अन्यथा फिर उस राशि की अनन्त संज्ञा निरर्थक हो जाएगी। इसलिए भव्यत्व तीन प्रकार का हो जाना चाहिए तथा सूत्र के साथ भी कोई विरोध नहीं आता है, क्योंकि शक्ति की अपेक्षा सूत्र में भव्यत्व के अनादिसान्तता का उपदेश दिया गया है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. ३२५)

६३. सिद्धान्त नवनीत

गर्भ से लेकर आठ वर्ष में सम्यक्त्व व संयम की योग्यता है

एको देवो नारको वा सम्यग्दृष्टिः मनुष्येषु उत्पद्य अंतर्मुहूर्ताभ्यधिकगर्भादिअष्टवर्षान् गमयित्वा संयमासंयमं प्रतिपद्य अंतर्मुहूर्तं विश्रम्य अंतर्मुहूर्तेन दर्शनमोहनीयं क्षपयित्वा क्षायिक सम्यग्दृष्टिः जातः। एवं चतुर्भिरन्तर्मुहूर्तैः अभ्यधिकाष्टवर्षैः ऊनं पूर्वकोटिकालं संयमासंयमं अनुपाल्य मृतो देवो जातः।

कोई एक देव अथवा नारकी सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यों में उत्पन्न होकर और अन्तर्मुहूर्त अधिक गर्भ से लेकर आठ वर्ष बिताकर संयमासंयम को प्राप्त होकर और अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके, एक अन्तर्मुहूर्त से दर्शनमोहनीय का क्षपण कर, क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो गया। इन चार अन्तर्मुहूर्तों से अधिक आठ वर्षों से कम पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण संयमासंयम को परिपालन करके मरा और देव हुआ।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. ३२८-३२९)

६४. सिद्धान्त नवनीत

वर्तमान में कौन सा सम्यक्त्व है

वर्तमानकाले अस्मिन् भरतक्षेत्रे पंचमकाले केवलिश्रुतकेवलिभगवतोरभावात् क्षायिकसम्यक्त्वं नास्ति, उपशमसम्यक्त्वस्य कालं अंतर्मुहूर्तमात्रमेव, अतोऽद्यत्वे वेदकसम्यक्त्वमेवास्माकं। अस्य कालमुत्कृष्टं षट्षष्टिसागरोपमप्रमाणं अस्ति। क्षायिकसम्यक्त्वं यावन्न भवेत्तावदिदं न नश्येत् एषैव मम भावना वर्तते।

इस भरतक्षेत्र के अन्दर वर्तमान काल में पंचमकाल (दुःषमकाल) चल रहा है अतः यहाँ केवली-श्रुतकेवली का अभाव होने से क्षायिकसम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं हो सकती है तथा उपशम सम्यक्त्व का काल मात्र अन्तर्मुहूर्त ही है, अतः आज हम सभी को वेदक-क्षयोपशम सम्यक्त्व ही है। इस वेदकसम्यक्त्व का उत्कृष्टकाल छ्यासठ सागर प्रमाण है। जब तक क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त न होवे, तब तक मेरा क्षयोपशम सम्यक्त्व नष्ट न होवे, यही मेरी भावना है। अर्थात् क्षायिक सम्यक्त्व होने तक मेरा क्षयोपशम सम्यक्त्व बना रहे, पुनः क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करके शीघ्र मोक्ष की प्राप्ति हो जावे, ऐसी भावना सभी को करना चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. ३२९)

६५. सिद्धान्त नवनीत

ऋद्धिधारी मुनि सुमेरुपर्वत के ऊर्ध्वप्रदेश तक जा सकते हैं

आचार्यः प्राह—नैष दोषः, उपरि योजनलक्षमात्रगमने संभवाभावात्।

मेरुमस्तकारोहणसमर्थानां ऋषीणां किमिति लक्षयोजनस्योपरि गमनं न संभवेत्? भवतु नाम मेरुपर्वतस्योर्ध्वप्रदेशे ऋषीणां गमनस्य शक्तिः किन्तु सर्वत्र गमनस्य नास्ति।

शंका—सुमेरुपर्वत के मस्तक (शिखर) पर चढ़ने में समर्थ ऋषियों के एक लाख योजन ऊपर गमन करने की संभावना क्यों नहीं है?

समाधान—सुमेरुपर्वत के ऊर्ध्वप्रदेश में ऋषियों के गमन करने की वह शक्ति भले ही होवे किन्तु मानुषक्षेत्र के भीतर एक लाख योजन ऊपर जाने की वह शक्ति सर्वत्र नहीं है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. ३१)

महापुराण में भी कहा है—

सानन्दं त्रिदशेश्वरैः सचकितं देवीभिरुत्पुष्करैः
सत्रासं सुरवारणैः प्रणिहितैरात्तादरं चारणैः।
साशङ्कं गगनेचरैः किमिदमित्यालोकितो यः स्फुरन्

मेरोर्मूर्द्ध्नि स नोऽवताज्जिनविभोर्जन्मोत्सवाम्भः प्लवः।।२१६।।

मेरु पर्वत के मस्तक पर स्फुरायमान होता हुआ, जिनेन्द्र भगवान के जन्माभिषेक का वह जल-प्रवाह हम सबकी रक्षा करे जिसे कि इन्द्रों ने बड़े आनन्द से, देवियों ने आश्चर्य से, देवों के हाथियों ने सूँड ऊँची उठाकर बड़े भय से, चारण ऋद्धिधारी मुनियों ने एकाग्रचित्त होकर बड़े आदर से और विद्याधरों ने 'यह क्या है' ऐसी शंका करते हुए देखा था।।२१६।।

(आदिपुराण, भाग-१, पृ. ३०३)

६६. सिद्धान्त नवनीत

नवग्रैवेयकों में मुनि ही जाते हैं भले ही भाव से मिथ्यादृष्टि ही क्यों न हों।

णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं फोसिदं? लोगस्स असंखेज्जदिभागो।।५५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतस्य सूत्रस्य वर्तमानातीतप्ररूपणासु स्पर्शनं क्षेत्रवत्। अत्र सर्वेऽपि देवा अहमिन्द्रा एव। विशेषेण तु-सुदर्शनामोघसुप्रबुद्ध-यशोधरसुभद्र-विशाल-सुमन सौमनसप्रीतिंकराख्याः नवग्रैवेयकाः सन्ति, एष्वपि त्रयोऽधोग्रैवेयकाः, त्रयोमध्यमग्रैवेयकाः त्रयश्चोपरिमग्रैवेयकाः भवन्ति। एतेषु मिथ्यात्वादिचतुर्गुणस्थानानि विद्यन्ते। अत्र द्रव्यवेषेण दिगंबरमुनय एव, भावेन कदाचित् मिथ्यादृष्टयः केचित्, सासादनाः, सम्यङ्मिथ्यादृष्टयः, असंयतसम्यग्दृष्टयोऽपि संयतासंयताः वा तत्र गंतुं शक्नुवन्ति। केचित् च द्रव्येण मुनयो भावेनापि षष्ठसप्तमादिगुणस्थानवर्तिनः तत्र उत्पद्यन्ते किन्तु तत्र देवगतौ चत्वार्येव गुणस्थानानि भवन्ति।**

नवग्रैवेयक विमानवासी देवों में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक प्रत्येक विमान के गुणस्थानवर्ती देवों ने कितना क्षेत्र स्पर्श किया है? लोक का असंख्यातवाँ भाग स्पर्श किया है।।५५।।

हिन्दी टीका—इस सूत्र की वर्तमानकालीन और अतीतकालीन प्ररूपणाओं में स्पर्शन को क्षेत्रप्ररूपणा के समान जानना चाहिए। इन नवग्रैवेयकों में सभी देव अहमिन्द्र ही होते हैं। विशेष बात यह है कि सोलह **स्वर्गों के ऊपर सुदर्शन, अमोघ, सुप्रबुद्ध, यशोधर, समुद्र, विशाल, सुमन, सौमनस और प्रीतिंकर नाम वाले नवग्रैवेयक विमान होते हैं।** उनमें तीन अधोग्रैवेयक हैं, तीन मध्यम ग्रैवेयक हैं और तीन उपरिम ग्रैवेयक हैं। इन सभी विमानों में रहने वाले देवों के मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और असंयतसम्यग्दृष्टि ये चार गुणस्थान पाये जाते हैं। द्रव्यवेष से दिगम्बर मुनि ही वहाँ

जन्म लेते हैं, भाव से कदाचित् मिथ्यादृष्टि जीव भी वहाँ जन्म ले लेते है और भाव की अपेक्षा ही सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा संयतासंयत गुणस्थानवर्ती मनुष्य भी वहाँ जन्म ले सकते हैं तथा कोई दिगम्बर भावलिंगी मुनि भी जो भाव से छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती हैं वे भी वहाँ उत्पन्न हो सकते हैं किन्तु वहाँ पर देवगति होने के कारण सभी के आदि के चार गुणस्थान ही होते हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ४, पृ. ६६)

भक्ति श्रावक और मुनि दोनों करते हैं

सम्मत्तणाणचरणे, जो भत्तिं कुणइ सावगो समणो।
तस्स दु णिव्वुदिभत्ती, होदि त्ति जिणेहि पण्णत्तं।।15।।

(श्री कुंदकुंददेवकृत-नियमसार गाथा-134)

अर्थ-जो श्रावक या मुनि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में भक्ति करते हैं उनके ही निर्वृत्ति भक्ति—मुक्ति की भक्ति या प्राप्ति होती है, ऐसा श्री जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

भावार्थ-नियमसार ग्रन्थ में श्री कुन्दकुन्ददेव ने चार अधिकार तक व्यवहार रत्नत्रय का वर्णन किया है। पुनः आगे पाँचवें अधिकार से ग्यारहवें अधिकार तक निश्चय रत्नत्रयस्वरूप निश्चय प्रतिक्रमण आदि का वर्णन किया है। इस पूरे ग्रन्थ में परमभक्ति अधिकार में श्रावक का नाम लिया है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यवहार और निश्चय रत्नत्रय के अधिकारी मुनि ही हैं किन्तु भक्ति के अधिकारी श्रावक भी हैं और मुनि भी हैं।

षट्खण्डागम पुस्तक-५

(सिद्धान्तचिंतामणि टीका से)

मंगलाचरणं

सिद्धाः सिद्ध्यन्ति सेत्स्यन्ति, त्रैकाल्ये ये नरोत्तमाः।
सर्वार्थसिद्धिदातारः, ते मे कुर्वन्तु मंगलम्।।१।।

श्लोकार्थ—जो महापुरुष तीनों कालों में—भूतकाल में सिद्ध हो चुके हैं, वर्तमान में सिद्ध हो रहे हैं और भविष्य में सिद्धपद को प्राप्त करेंगे, वे सर्वार्थसिद्धि को प्रदान करने वाले—सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि करने वाले सिद्धपरमेष्ठी भगवान मेरा और तुम्हारा मंगल करें अर्थात् हम सभी के लिए मंगलकारी होवें।

६७. सिद्धान्त नवनीत

असंयत सम्यग्दृष्टी का उत्कृष्ट अंतर

एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने तीनों करण करके प्रथमोपशम सम्यक्त्व को ग्रहण करते हुए अनन्त संसार छेदकर सम्यक्त्व ग्रहण करने के प्रथम समय में संसार को अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र कर लिया। पुनः उपशमसम्यक्त्व के साथ अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर (१) उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियाँ अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थान को प्राप्त होकर अन्तर को प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्व के साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर अंतिम भव में संयम को अथवा संयमासंयम को प्राप्त होकर कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्वी होकर अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण संसार के अवशेष रह जाने पर परिणामों के निमित्त से असंयतसम्यग्दृष्टि हो गया। इस प्रकार सूत्रोक्त अन्तरकाल प्राप्त हुआ (२)। पुनः अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त होकर (३) प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थान संबंधी सहस्रों परावर्तनों को करके (४) क्षपक श्रेणी के योग्य विशुद्धि से विशुद्ध होकर (५) अपूर्वकरणसंयत (६) अनिवृत्तिकरण (७) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (८) क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ (९) सयोगिकेवली (१०) और अयोगिकेवली (११) होकर निर्वाण को प्राप्त हो गया। इस प्रकार से इन ग्यारह अन्तर्मुहूर्तों से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. १५)

६८. सिद्धान्त नवनीत

संयतासंयत का उत्कृष्ट अंतर

अब संयतासंयत जीवों का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने तीनों करण करके सम्यक्त्व ग्रहण करने के प्रथम समय में सम्यक्त्वगुण के द्वारा अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण किया। पुनः सम्यक्त्व के साथ ही ग्रहण किये गये संयमासंयम के साथ अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर, उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियाँ अवशेष रह जाने पर सासादनगुणस्थान को प्राप्त हो (१) अन्तर को प्राप्त हो गया और मिथ्यात्व के साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर अंतिम भव में असंयम से सहित सम्यक्त्व को अथवा संयमासंयम को प्राप्त होकर कृतकृत्य वेदकसम्यक्त्वी हो परिणामों के निमित्त से संयमासंयम को प्राप्त हुआ (२) इस प्रकार से इस गुणस्थान का अन्तर प्राप्त हो गया। पुनः अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त होकर (३) प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थान संबंधी सहस्रों परिवर्तनों को करके (४) क्षपकश्रेणी के योग्य विशुद्धि से विशुद्ध होकर (५) अपूर्वकरण (६) अनिवृत्तिकरण (७) सूक्ष्मसाम्पराय (८) क्षीणकषाय (९) सयोगिकेवली (१०) और अयोगिकेवली (११) होकर निर्वाण को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से इन ग्यारह अन्तर्मुहूर्तों से कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल संयतासंयत का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. १६)

६९. सिद्धान्त नवनीत

प्रमत्त संयत का उत्कृष्ट अन्तर

अब प्रमत्तसंयत का अन्तर कहते हैं—एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्व और संयम को एक साथ प्राप्त होते हुए अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गल परिवर्तन मात्र किया। पुनः उस अवस्था में अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) प्रमत्तसंयत हुआ (२)। इस प्रकार से यह अर्धपुद्गलपरिवर्तन की आदि दृष्टिगोचर हुई। पुनः उपशमसम्यक्त्व के काल में छह आवलियाँ अवशेष रह जाने पर सासादनगुणस्थान में जाकर अन्तर को प्राप्त होकर मिथ्यात्व के साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल परिभ्रमण कर अंतिम भव में असंयमसहित सम्यक्त्व को अथवा संयमासंयम को प्राप्त होकर कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वी हो अप्रमत्तभाव के साथ संयम को प्राप्त होकर प्रमत्तसंयत हो गया (३)। इस प्रकार से इस

गुणस्थान का अन्तर प्राप्त हो गया। पश्चात् क्षपकश्रेणी के योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (४) पुनः अपूर्वकरणसंयत (५) अनिवृत्तिकरण संयत (६) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (७) क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ (८) सयोगिकेवली (९) और अयोगिकेवली (१०) होकर निर्वाण को प्राप्त हुआ। इस प्रकार से दश अन्तर्मुहूर्तों से कम अर्धपुद्गल परिवर्तनकाल प्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. १६-१७)

७०. सिद्धान्त नवनीत

अप्रमत्त संयत का उत्कृष्ट अन्तर

अब अप्रमत्तसंयत का अन्तर कहते हैं—एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव ने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्व को और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान को एक साथ प्राप्त होकर सम्यक्त्व ग्रहण करने के प्रथम समय में ही अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र किया। उस अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) प्रमत्तसंयत हुआ और अन्तर को प्राप्त होकर मिथ्यात्व के साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल परिवर्तन कर अंतिम भव में सम्यक्त्व अथवा संयमासंयम को प्राप्त होकर दर्शनमोह की तीन और अनन्तानुबंधी की चार इन सात प्रकृतियों का क्षपणकर अप्रमत्तसंयत हो गया (२) इस प्रकार अप्रमत्तसंयत का अन्तरकाल उपलब्ध हुआ। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान में सहस्रों परावर्तनों को करके (३) अप्रमत्तसंयत हुआ (४) पुनः अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) क्षीणकषाय (८) सयोगिकेवली (९) और अयोगिकेवली (१०) होकर निर्वाण को प्राप्त हुआ। इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्त कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमाण अप्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो गया।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. १७)

७१. सिद्धान्त नवनीत

असंयत सम्यग्दृष्टी नारकी का उत्कृष्ट अन्तर

असंयतसम्यग्दृष्टेरुच्यते—एकः तिर्यङ् मनुष्यो वा अष्टाविंशतिसत्कर्मी मिथ्यादृष्टिः अधः सप्तम्यां पृथिव्यां नारकेषु उत्पन्नः। षट्पर्याप्तिभिः पर्याप्तो जातः (१) विश्रान्तः (२) विशुद्धः (३) वेदकसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः (४) संक्लिष्टः मिथ्यात्वं गत्वान्तरितः। अवसाने तिर्यगायुः बद्धवा अंतर्मुहूर्तं विश्रम्य विशुद्धो भूत्वा उपशमसम्यक्त्वं प्रतिपन्नः

(५) लब्धमन्तरं। भूयः मिथ्यात्वं गत्वा निर्गतः (६)। एवं षडन्तर्मुहूर्तैः त्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाणम-संयतसम्यग्दृष्टेरूत्कृष्टान्तरं भवति।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी का अन्तर कहते हैं—मोहकर्म की अट्ठाईस कर्मप्रकृतियों की सत्ता वाला कोई एक तिर्यंच, अथवा मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव नीचे सातवीं पृथिवी के नारकियों में उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियों से पर्याप्त होकर (१), विश्राम लेकर (२), विशुद्ध होकर (३), वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (४) पुनः संक्लिष्ट हो मिथ्यात्व को प्राप्त होकर अन्तर को प्राप्त हुआ। आयु के अंत में तिर्यंचायु बांधकर पुनः अन्तर्मुहूर्त विश्राम करके विशुद्ध होकर उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार इस गुणस्थान का अन्तर लब्ध हुआ। पुनः मिथ्यात्व में जाकर नरक से निकला (६)। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तों से कम तेंतीस सागरोपमकाल असंयतसम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अन्तर होता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २६)

७२. सिद्धान्त नवनीत

मनुष्य का अप्रमत्तसंयमी होकर उत्कृष्ट अंतर बताते हैं

अप्रमत्तस्योत्कृष्टान्तरमुच्यते—एकः अष्टाविंशतिसत्ताकः अन्यगतेरागत्य मनुष्येषु उत्पद्य गर्भाद्यष्टवार्षिको जातः। सम्यक्त्वं अप्रमत्तगुणस्थानं च युगपत् प्रतिपन्नः (१)। प्रमत्तो भूत्वान्तरितः अष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोटीः परिभ्रम्य अपश्चिमायां पूर्वकोट्यां बद्धदेवायुष्कः सन् अप्रमत्तो जातः। लब्धमन्तरं (२)। ततः प्रमत्तो भूत्वा (३) मृतो देवो जातः। त्रिभिरन्तर्मुहूर्तैः अभ्यधिकैः अष्टवर्षैः ऊना अष्टचत्वारिंशत्पूर्वकोट्यः उत्कृष्टान्तरं।

अब अप्रमत्तसंयत का उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं—मोहनीयकर्म की अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता रखने वाला कोई एक जीव अन्य गति से आकर मनुष्यों में उत्पन्न होकर गर्भ काल से लेकर आठ वर्ष का हुआ और सम्यक्त्व तथा अप्रमत्त गुणस्थान को एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्तसंयत गुणस्थान में आकर अन्तर को प्राप्त हुआ और अड़तालीस पूर्वकोटि काल तक परिभ्रमण कर अंतिम पूर्वकोटि में बद्धदेवायु से सहित होता हुआ अप्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकार से अन्तर प्राप्त हुआ (२)। तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत होकर (३) मरा और देव हो गया। ऐसे तीन अन्तर्मुहूर्तों से अधिक आठ वर्षों से कम अड़तालीस पूर्वकोटि प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. ५६)

७३. सिद्धान्त नवनीत

संयतासंयत मनुष्य का उत्कृष्ट अंतर बतलाते हैं

संयतासंयतस्य उत्कर्षेण—एकः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। गर्भाद्यष्टवर्षाणामुपरि अंतर्मुहूर्तेन (१) क्षायिकं सम्यक्त्वं प्रतिष्ठाप्य (२) विश्रम्य (३) संयमासंयमं प्रतिपद्य (४) संयमं प्रतिपन्नः। पूर्वकोटिकालं गमयित्वा मृतः समयोनत्रयस्त्रिंशत्सागरायुः-स्थितिकेषु देवेषु उत्पन्नः। ततश्च्युतः पूर्वकोट्यायुष्केषु मनुष्येषु उत्पन्नः। स्तोकावशेषे जीविते संयमासंयमं गतः (५)। ततः अप्रमत्तादिनवान्तर्मुहूर्तैः सिद्धो जातः। अष्टवर्षैः चतुर्दशान्तर्मुहूर्तैश्च न्यूनं द्वाभ्यां पूर्वकोटीभ्यां सातिरेकं त्रयस्त्रिंशत्सागरप्रमाणमुत्कृष्टान्तरं।

संयतासंयत का उत्कृष्ट अंतर कहते हैं—एक जीव पूर्वकोटि वर्ष की आयुवाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। वहाँ गर्भ को आदि लेकर आठ वर्षों के पश्चात् अंतर्मुहूर्त से (१) क्षायिकसम्यक्त्व को प्राप्त कर (२) विश्राम लेकर (३) संयमासंयम को प्राप्तकर (४) संयम को प्राप्त हुआ। वहाँ संयमसहित पूर्वकोटीकाल बिताकर मरा और एक समय कम तेंतीस सागरोपम की आयुस्थिति प्रमाण वाले देवों में उत्पन्न हुआ। वहां से च्युत होकर पूर्वकोटी की आयुवाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। जीवन के अल्प अवशेष रह जाने पर संयमासंयम को प्राप्त हुआ (५)। इसके पश्चात् अप्रमत्तादि गुणस्थानसंबंधी नौ अंतर्मुहूर्तों से सिद्ध हो गया। इस प्रकार आठ वर्ष और चौदह अंतर्मुहूर्तों से कम दो पूर्वकोटियों से कुछ अधिक तेंतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत का उत्कृष्ट अंतर होता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. १५८)

७४. सिद्धान्त नवनीत

पंचेन्द्रिय योनिमती तिर्यंच-तिर्यंचिनी के क्षायिक भाव नहीं होता है

सम्यग्दृष्टेः औपशमिकः क्षायिकः क्षायोपशमिको वा। औदयिकेन भावेन पुनः असंयतोभावः, संयतासंयतः इति क्षायोपशमिको भावः। अस्ति किञ्चिद्विशेषः—पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु असंयतसम्यग्दृष्टिषु औपशमिकः क्षायोपशमिको वा न च क्षायिकः, क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां बद्धायुष्कानां स्त्रीवेदेषु उत्पत्तेरभावात्, मनुष्यगतिव्यतिरिक्तशेषगतिषु दर्शनमोहनीयक्षपणाभावाच्च।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि के क्षायोपशमिक भाव होता है, सम्यग्दृष्टि के औपशमिक-क्षायिक अथवा क्षायोपशमिक में से कोई भी भाव होता है। औदयिक भाव से युक्त असंयतभाव, संयतासंयत भाव ये क्षायोपशमिक भाव होते हैं।

यहाँ कुछ विशेष कथन करते हैं — पंचेन्द्रिययोनिमती तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों में औपशमिक अथवा क्षायोपशमिक भाव होता है, क्षायिक भाव नहीं होता है, क्योंकि बद्धायुष्क क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों का स्त्रीवेदियों में उत्पत्ति का अभाव पाया जाता है और मनुष्यगति को छोड़कर शेष गतियों में दर्शनमोहनीय के क्षपण का अभाव देखा जाता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २०८)

७५. सिद्धान्त नवनीत

भाववेद की अपेक्षा तीनों वेदों में नव गुणस्थान होते हैं। यहाँ द्रव्य से पुरुषवेदी ही हैं ऐसा जानना।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं।।४१।।

अवगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं।।४२।।

वेदमार्गणा के अनुवाद से स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी में मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान होते हैं।।४१।।

अपगतवेदियों में अनिवृत्तिकरण से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव गुणस्थान के समान हैं।।४२।।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २१८)

७६. सिद्धान्त नवनीत

तिर्यंचों में क्षायिक सम्यग्दृष्टी असंख्यात हैं। संयतासंयत भी असंख्यातों हैं।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।४६।।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।४७।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।४८।।

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्माइट्ठी।।४९।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।५०।।

तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।४६।।

तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।४७।।

तिर्यंचों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।४८।।

तिर्यंयों में संयतासंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।४९।।

तिर्यंचों में संयतासंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।५०।।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २६४-२६५)

७७. सिद्धान्त नवनीत

देवों में असंयत सम्यग्दृष्टि असंख्यातों हैं।

देवगदीए देवेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।।८१।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।८२।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।८३।।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।८४।।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।८५।।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।८६।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।८७।।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्प-वासियदेवीओ च सत्तमाए पुढवीए भंगो।।८८।।

सोहम्मीसाण जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु जहा देवगइभंगो।।८९।।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु सव्वत्थोवा सासण-सम्मादिट्ठी।।९०।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।९१।।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।९२।।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।९३।।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।९४।।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।९५।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।९६।।

अणुदिसादि जाव अवराइदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।९७।।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।९८।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।९९।।

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।१००।।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१०१।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१०२।।

देवगति में देवों में सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।८१।।

सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।८२।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं।।८३।।

देवों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।८४।।

देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।८५।।

देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।८६।।

देवों में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।८७।।

देवों में भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क देव और देवियाँ तथा सौधर्म-ईशान कल्पवासिनी देवियाँ, इनका अल्पबहुत्व सातवीं पृथिवी के अल्पबहुत्व के समान है।।८८।।

सौधर्म-ईशान कल्प से लेकर शतार-सहस्रार कल्प तक कल्पवासी देवों में अल्पबहुत्व देवगति सामान्य के अल्पबहुत्व के समान है।।८९।।

आनत-प्राणत कल्प से लेकर नवग्रैवेयक विमानों तक विमानवासी देवों में सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।९०।।

उक्त विमानों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।९१।।

उक्त विमानों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं।।९२।।

उक्त विमानों में मिथ्यादृष्टियों से असंयत-सम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।९३।।

आनत-प्राणत कल्प से लेकर नवग्रैवेयक तक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं।।९४।।

उक्त विमानों में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिक सम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं।।९५।।

उक्त विमानों में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।९६।।

नव अनुदिशों को आदि लेकर अपराजित नामक अनुत्तरविमान तक विमानवासी देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।९७।।

उक्त विमानों में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं।।९८।।

उक्त विमानों में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।९९।।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसग्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।१००।।

उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।१०१।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं।।१०२।।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २७४ से २७८ तक)

७८. सिद्धान्त नवनीत

प्रथम नरक में क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंख्यातों हैं।

असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।३१।।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३२।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।३३।।

नारकियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।।३१।।

नारकियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।३२।।

नारकियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं।।३३।।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २५७)

७९. सिद्धान्त नवनीत

औदारिकमिश्रकाययोगी में क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली।।१२२।।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१२३।।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१२४।।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा।।१२५।।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।१२६।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१२७।।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवों में सयोगिकेवली सबसे कम हैं।।१२२।।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में सयोगिकेवली जिनों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१२३।।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१२४।।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं।।१२५।।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१२६।।

औदारिकमिश्रकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं।।१२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—कपाट समुद्घात के समय आरोहण और अवतरणक्रिया में संलग्न चालीस केवलियों के अवलम्बन से औदारिकमिश्रकाययोगियों में सयोगिकेवली सबसे कम हो जाते हैं। देव, नारकी और मनुष्यों से आकर तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोग में सयोगिकेवली जिनों से संख्यातगुणित पाये जाते हैं।

सासादन जीव असंख्यातगुणे हैं। यहाँ पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है।

गुणकार क्या है ? मिथ्यादृष्टि जीव अनंतगुणे हैं। यहाँ अभव्यसिद्धों से अनन्तगुणित और सिद्धों से भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है, ऐसा जानना चाहिए।

चतुर्थ गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं, क्योंकि दर्शनमोहनीयकर्म के क्षय से उत्पन्न हुए श्रद्धान वाले जीवों का होना अति दुर्लभ है।

क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि संख्यातगुणा हैं, क्योंकि क्षायोपशमिक सम्यक्त्व वाले जीव बहुत पाये जाते हैं। संख्यात समय यहाँ गुणकार है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में औदारिकमिश्रयोग में अल्पबहुत्व का प्रतिपादन करने वाले छह सूत्र पूर्ण हुए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २८६ व २८७)

८०. सिद्धान्त नवनीत

वैक्रियिक मिश्रकाययोगियों में क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातों हैं एवं वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातों हैं।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।१३२।।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।१३३।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१३४।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१३२।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१३३।।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार का अल्पबहुत्व देवगति में कहा गया है उसी प्रकार की व्यवस्था वैक्रियिककाययोगियों में जानना चाहिए। शेष सूत्रों का अर्थ सुगम है।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में वैक्रियिकमिश्रकाययोग में उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम होते हैं, क्योंकि उपशमसम्यक्त्व के साथ उपशमश्रेणी में मरे हुए जीवों का प्रमाण अत्यन्त अल्प होता है। क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उनसे संख्यातगुणे हैं, क्योंकि उपशमश्रेणी में मरे हुए उपशामकों से संख्यातगुणित असंयतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानों की अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का संचय संभव है। उनसे असंख्यातगुणे अधिक वेदकसम्यग्दृष्टि होते हैं, क्योंकि तिर्यंचों से पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र वेदकसम्यग्दृष्टि जीवों का देवों में उत्पन्न होना संभव है। यहाँ गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग मानना चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २८७ से २८८)

८१. सिद्धान्त नवनीत

कार्मणकाययोगियों में क्षायिक सम्यग्दृष्टी संख्यातगुणित हैं।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।।१४१।।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१४२।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१४३।।

कार्मणकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१४१।।

कार्मणकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१४२।।

कार्मणकाययोगियों में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रतर और लोकपूरण समुद्घात में अधिक से अधिक मात्र साठ सयोगिकेवली जिन पाये जाने के कारण उनकी संख्या सबसे कम होती है। चतुर्थ गुणस्थान में सबसे कम उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं, क्योंकि उपशमश्रेणी में उपशमसम्यक्त्व के साथ मरे हुए संयतों का प्रमाण संख्यात ही पाया जाता है। कार्मणकाययोग में क्षायिकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणे होते हैं।

शंका—पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से असंख्यात जीव विग्रह क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान—ऐसी आशंका पर आचार्य कहते हैं कि न तो असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव एक साथ मरते हैं, अन्यथा मनुष्यों में असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियों के होने का प्रसंग आ जायेगा। न मनुष्यों में ही असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरते हैं क्योंकि उनमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का अभाव है। न असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि तिर्यंच ही मारणान्तिक समुद्घात करते हैं, क्योंकि उनमें आपके अनुसार व्यय होता है। इसलिए विग्रहगति में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं तथा संख्यात होते हुए भी वे उपशमसम्यग्दृष्टियों से संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि उपशमसम्यग्दृष्टियों के आय का कारण से क्षायिकसम्यग्दृष्टियों के आय का कारण संख्यातगुणा हैं।

वेदकसम्यग्दृष्टि इनसे असंख्यातगुणे होते हैं। यहाँ पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है, जो पल्योपम के असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है और प्रतिभाग क्षायिकसम्यग्दृष्टि राशि से गुणित असंख्यात आवली प्रमाण है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २९०-२९४)

८२. सिद्धान्त नवनीत

भावस्त्रीवेदी जो कि द्रव्य से पुरुषवेदी हैं उनके चौदहों गुणस्थान होते हैं, उनकी संख्या दिखाते हैं-

वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु दोसु वि अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा।।१४४।।

खवा संखेज्जगुणा।।१४५।।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा।।१४६।।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा।।१४७।।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।१४८।।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१४९।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१५०।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१५१।।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१५२।।

वेदमार्गणा के अनुवाद से स्त्रीवेदियों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों ही गुणस्थानों में उपशामक जीव प्रवेश की अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं।।१४४।।

स्त्रीवेदियों में उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।१४५।।

स्त्रीवेदियों में क्षपकों से अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।१४६।।

स्त्रीवेदियों में अप्रमत्तसंयतों से प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं।।१४७।।

स्त्रीवेदियों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं।।१४८।।

स्त्रीवेदियों में संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१४९।।

स्त्रीवेदियों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१५०।।

स्त्रीवेदियों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१५१।।

स्त्रीवेदियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों से मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—भावस्त्रीवेद को धारण करने वाले द्रव्य पुरुषवेदियों में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती मुनियों की संख्या मात्र दस होने के कारण प्रवेश की अपेक्षा वे एक समान और सबसे कम होते हैं। इन दोनों गुणस्थानों में क्षपक श्रेणी वाले मुनियों की संख्या बीस प्रमाण होने से वह भी कम ही है।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।१५३।।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१५४।।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१५५।।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी।।१५६।।

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१५७।।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१५८।।

एवं दोसु अद्धासु।।१५९।।

सव्वत्थोवा उवसमा।।१६०।।

खवा संखेज्जगुणा।।१६१।।

स्त्रीवेदियों में असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१५३।।

स्त्रीवेदियो में असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से उपशम सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१५४।।

स्त्रीवेदियों में असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थान में उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१५५।।

स्त्रीवेदियों में प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं।।१५६।।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियों से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१५७।।

उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१५८।।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानों में स्त्रीवेदियों का अल्पबहुत्व है।।१५९।।

स्त्रीवेदियों में उपशामक जीव सबसे कम हैं।।१६०।।

स्त्रीवेदियों में उपशामकों से क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं।।१६१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उपर्युक्त सूत्रों का अर्थ सरल है। भावस्त्रीवेदी मुनि श्रेणी में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानों में क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम होते हैं, उपशमसम्यग्दृष्टि उनसे संख्यातगुणे अधिक हैं।

सबसे कम उपशामक मुनियों की संख्या है और क्षपक मुनि संख्यातगुणे होते हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २९२-२९३-२९४)

८३. सिद्धान्त नवनीत

पुरुषवेदियों में संयतासंयत असंख्यात हैं

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।१६६।।

पुरुषवेदियों में अप्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं।।१६६।।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २९५)

८४. सिद्धान्त नवनीत

नपुंसकवेदियों में संयतासंयत असंख्यात हैं। असंयत सम्यक्त्वी भी असंख्यात हैं।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा।।१७९।।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१८०।।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।।१८१।।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।।१८२।।

नपुंसकवेदियों में प्रमत्तसंयतों से संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं।।१७९।।

नपुंसकवेदियों में संयतासंयतों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१८०।।

नपुंसकवेदियों में सासादनसम्यग्दृष्टियों से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं।।१८१।।

नपुंसकवेदियों में सम्यग्मिथ्यादृष्टियों से असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।।१८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — भावनपुंसकवेदी, द्रव्यपुरुषवेदी जीवों में आठवें-नवमें दोनों गुणस्थानों में प्रवेश की अपेक्षा उपशमसम्यग्दृष्टि जीव एक समान और सबसे कम हैं, क्योंकि उनका प्रमाण पाँच की संख्यामात्र है। क्षपकों की संख्या दश प्रमाण है। अप्रमत्तसंयत संचयराशि को ग्रहण करने के कारण संख्यातगुणे हैं। प्रमत्तसंयत उनसे संख्यातगुणे हैं। संयतासंयत जीवों का गुणकार पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग है अतः उनकी संख्या असंख्यातगुणी है। सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं, यहाँ आवली का असंख्यातवाँ भाग गुणकार है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि उनसे संख्यातगुणे हैं, यहाँ संख्यात समय गुणकार है।

असंयतसम्यग्दृष्टि उनसे असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है। इनसे अनंतगुणी संख्या मिथ्यादृष्टि जीवों की है, यहाँ अभव्यों से अनन्तगुणा गुणकार है और सिद्धों से भी अनंतगुणा है, जो सर्वजीवराशि के अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है।

तात्पर्य यह है कि प्रथम गुणस्थान से लेकर पंचम गुणस्थान तक द्रव्य से नपुंसकवेदी होते हैं, किन्तु छठे गुणस्थान से लेकर ऊपर के सभी गुणस्थानों में मनुष्य भाव से तो नपुंसक वेदी हो सकते हैं किन्तु द्रव्य से उनके पुरुषवेद ही जानना चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २९७)

८५. सिद्धान्त नवनीत

नपुंसकवेदी में क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंख्यातों हैं। ये प्रथम पृथ्वी नरक की अपेक्षा से कथन है।

असंयतसम्यग्दृष्टियों में उपशमसम्यदृष्टि सबसे कम हैं। क्षायिकसम्यग्दृष्टि उनसे असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है, क्योंकि यहाँ पर प्रथम पृथिवी के क्षायिक सम्यग्दृष्टि नारकी जीवों की प्रधानता रहती है। वेदकसम्यग्दृष्टि उनसे असंख्यातगुणे हैं, यहाँ गुणकार आवली का असंख्यातवाँ भाग है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २९९)

८६. सिद्धान्त नवनीत

द्रव्य पुरुषवेदी जो कि भाव से नपुंसक वेदी हैं, उनके चौदहों गुणस्थान होते हैं।

संयतासंयतों में क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, क्योंकि मनुष्यपर्याप्त नपुंसकवेदी जीवों को छोड़कर उनका अन्यत्र अभाव है। नपुंसकवेदी संयतासंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टि से उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। गुणकार पल्योपम के असंख्यातवें भाग प्रमाण है, अर्थात् वह पल्योपम के असंख्यातप्रथम वर्गमूलप्रमाण है। नपुंसकवेदी संयतासंयत उपशमसम्यग्दृष्टियों से वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। गुणकार आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं, क्योंकि अप्रशस्त वेद के उदय के साथ दर्शनमोहनीय कर्म के क्षपण करने वाले बहुत जीवों का वहाँ अभाव पाया जाता है।

दोनों श्रेणी वाले गुणस्थानों में सबसे कम क्षायिक सम्यग्दृष्टि होते हैं, उनसे संख्यातगुणे उपशमसम्यग्दृष्टि होते हैं। उपशमश्रेणी पर चढ़ने वाले उपशामक मुनि सबसे कम हैं, उनसे संख्यातगुणे क्षपकश्रेणी पर चढ़ने वाले मुनियों की संख्या होती है ऐसा जानना चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ५, पृ. २९९-३००)

षट्खण्डागम पुस्तक-६

(सिद्धान्तचिंतामणि टीका से)

मंगलाचरणम्

सिद्धान् भूम्यष्टमीप्राप्तान्, अष्टगुणसमन्वितान्।
अष्टाङ्गेन नुमो नित्य-मष्टकर्मविमुक्तये।।१।।

श्लोकार्थ— जो आठ गुणों से सहित हैं, आठवीं—ईषत्प्राग्भारा नाम की पृथ्वी को प्राप्त हो चुके हैं ऐसे सिद्ध भगवन्तों को हम आठों कर्मों से छूटने के लिये नित्य ही अष्टांग नमस्कार करते हैं।

८७. सिद्धान्त नवनीत

सूत्रों के ज्ञान से पापों का क्षय होता है

इदं सूत्रं प्रथममहादण्डकप्रतिपादनपरत्वेनास्ति।

तत्र सम्यक्त्वाभिमुखजीवैः बध्यमानप्रकृतीनां समुत्कीर्तनायां त्रिषु महादण्डकेषु एषः प्रथमो महादण्डकः कर्तव्यः-वक्तव्यः इति।

कथमेतस्य महत्त्वं कथितम् ?

एतस्यावगमेन महापापस्य क्षयोपलंभात्, प्रथमसम्यक्त्वाभिमुखत्वेन महत्त्वं संप्राप्तजीवैः बध्यमानत्वाद्वा।

यहाँ यह सूत्र प्रथम महादण्डक के प्रतिपादनरूप है।

प्रकृत में सम्यक्त्व के अभिमुख जीवों के द्वारा बध्यमान प्रकृतियों की समुत्कीर्तना करने पर प्रथम महादण्डक का कथन करना चाहिए।

शंका— इसे बड़ापना किस कारण से है ?

समाधान— क्योंकि इसके ज्ञान से महापाप का क्षय पाया जाता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. ११४)

८८. सिद्धान्त नवनीत

आगम में अनुमान की आवश्यकता नहीं है वह स्वयं प्रमाण है

प्रवचने अनुमानस्य प्रमाणस्य प्रमाणत्वाभावात्[३०]।

उक्तं च—''आगमो हि णाम केवलणाणपुरस्सरो पाएण अणिंदियत्थविसओ अचिंतियसहावो जुत्तिगोयरादीदो। तदो ण लिंगबलेण किंचि वोत्तुं सक्किज्जदि तम्हा सुत्तमिदमाढवेदव्वं चेव[३१]।''

प्रवचन (परमागम) में अनुमान प्रमाण से प्रमाणता नहीं मानी गई है। श्री वीरसेन स्वामी ने धवला टीका में कहा है कि — "जो केवलज्ञानपूर्वक उत्पन्न हुआ है, प्रायः अतीन्द्रिय पदार्थों को विषय करने वाला है, अचिन्त्य-स्वभावी है और युक्ति के विषय से परे है, उसका नाम आगम है।" अतएव उस आगम में लिंग अर्थात् अनुमान के बल से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इसलिए यह सूत्र बनाना ही चाहिये।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. १३६)

८९. सिद्धान्त नवनीत

अकालमृत्यु होती है उसका निवारण भी कदाचित् संभव है

आवलियं आबाहा उदीरणमासिज्ज सत्तकम्माणं।
परभविय-आउगस्स य उदीरणा णत्थि णियमेण[३२]।।१५९।।

अत्रायमर्थः — वर्तमानकाले भुज्यमानायुषः उदीरणा भवितुं शक्नोति किंतु बध्यमानागामिभवस्यायुषः उदीरणा नास्ति।

राज्ञः श्रेणिकस्य बद्ध नरकायुषः अपकर्षणं जातं चतुरशीतिसहस्रवर्षमात्रं इति ज्ञातव्यं।

भुज्यमानायुषां उदीरणाविषये सूत्रं प्ररूपितं श्रीमदुमास्वामिना तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थे —
औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः।।५३।।

चरमशब्दस्यान्तवाचित्वात्तज्जन्मनि निर्वाणार्हग्रहणं। उत्तमशब्दस्योत्कृष्टवाचित्वाच्चक्रधरादिग्रहणं। बाह्यस्योपघातनिमित्तस्य विषशस्त्रादेः सति सन्निधाने ह्रासोऽपवर्त इत्युच्यते।

उत्तमदेहाश्चक्रधरादयोऽनपवर्त्यायुषः इत्येतल्लक्षणमव्यापि। कुतः? अन्तस्य चक्रधरस्य ब्रह्मदत्तस्य वासुदेवस्य च कृष्णस्य अन्येषां च तादृशानां बाह्यनिमित्तवशादायुरपवर्तदर्शनात् ?

न वैष दोषः। किं कारणं ? चरमशब्दस्योत्तमविशेषणत्वात्।

पुनरपि कश्चिदाशंकते —

अप्राप्तकालस्य मरणानुपलब्धेरपवर्ताभावः इति चेत्, न; दृष्टत्वादाम्रफलादिवत् ।१०। यथा अवधारितपाककालात् प्राक् सोपायोपक्रमे सत्याम्रफलादीनां दृष्टः पाकस्तथा परिच्छिन्नमरणकालात् प्रागुदीरणाप्रत्यय आयुषो भवत्यपवर्तः।

आयुर्वेदसामर्थ्याच्च।११। यथा अष्टाङ्गायुर्वेदविद् भिषक् प्रयोगे अतिनिपुणो यथाकालवाताद्युदयात् प्राक् वमनविरेचनादिना अनुदीर्णमेव श्लेष्मादि निराकरोति, अकालमृत्युव्युदासार्थं रसायनं चोपदिशति, अन्यथा रसायनोपदेशस्य वैयर्थ्यं। न चादोऽस्ति ? अतः आयुर्वेदसामर्थ्यादस्त्यकालमृत्युः।

स्यान्मतं — दुःखप्रतीकारोऽर्थः आयुर्वेदस्येति ?

तन्न, किं कारणं ? उभयथा दर्शनात्। उत्पन्नानुत्पन्नवेदनयोर्हि चिकित्सादर्शनात्।

स्यान्मतं — यद्यकालमृत्युरस्ति कृतप्रणाशः प्रसज्येत इति ?

तन्न,

किं कारणं ?

दत्वैव फलं निवृत्तेः, नाकृतस्य कर्मणः फलमुपभुज्यते, न च कृतकर्मफलविनाशः अनिर्मोक्षप्रसंगात्, दानादिक्रियारम्भाभावप्रसंगात् च। किंतु कृतं कर्म फलं दत्वैव निवर्तते वितताद्रपट शोषवत् अयथाकालनिर्वृत्तः पाकः इत्ययं विशेषः[३३]।

अस्यैव तत्त्वार्थसूत्रमहाग्रन्थस्य श्लोकवार्तिकमहाभाष्ये ग्रन्थे श्रीमदाचार्य-विद्यानन्दमहोदयेनापि[३४] प्रोक्तं —

"सत्यप्यसद्वेद्योदयेऽन्तरंगे हेतौ दुःखं बहिरंगे वातादिविकारे तत्प्रतिपक्षौषधौपयोगोपनीते दुःखस्यानुत्पत्तेः प्रतिकारः स्यात्" —

कटुकादिभेषजौपयोगजपीडामात्रं स्वफलं दत्वैवासद्वेद्यस्य निवृत्तेर्न कृतप्रणाशः[३५]।"

अकालमृत्युविषये श्रीकुंदकुंददेवेनापि प्रोक्तं —

विसवेयणरत्तक्खय-भयसत्थग्गहणसंकिलेसाणं।
आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जदे आऊ[३६]।।२५।।

पुरा षडशीतिसहस्रपंचशतवर्षपूर्वं महाभारतयुद्धकाले सर्वाधिकाकालमृत्युः संजातः इति उत्तरपुराणे श्रीगुणभद्रसूरिणा कथितं —

तत्र वाच्यो मनुष्याणां मृत्योरुत्कृष्टसञ्चयः।
कदलीघातजातस्येत्युक्तिमत् तद्रणाङ्गणम्[३७]।।१०९।।

वर्तमानकालेऽपि आकस्मिक् दुर्घटना नानाविधा श्रूयते — क्वचित् भूकंपदुर्घटनायां सहस्राणि मनुष्याः पशवश्च सार्धमेव म्रियन्ते, क्वचिद् नदीपूरप्रवाहेण अनेकग्रामाः जलमग्नाः जायन्ते, तत्रापि शतानि सहस्राणि च परिवाराः नश्यन्ति। कुत्रचिद् वायुयानपतनदुर्घटनायां शतानि मनुष्याः उपरितनादधो पतित्वा मृत्युं प्राप्नुवन्ति। कदाचित् एवमेव वाष्पयान-विद्युद्यान-चतुश्चक्रिका-त्रिचक्रिका-द्विचक्रिकादिपतन-परस्पर-संघट्टनादिदुर्घटनासु अनेके मनुष्याः म्रियन्ते, क्वचित् बमविस्फोटकेन वा कालं कुर्वन्ति, एतत्सर्वं प्रत्यक्षेण दृश्यते, अत्रापि नानादुर्घटनाभिर्ये म्रियन्ते तेषामधिकांशतः अकालमृत्युना एव मरणं, न च सर्वेषां युगपदेव मृत्युमागच्छति, अतो जिनवचनस्योपरि श्रद्धानं कर्तव्यम्।

तथा च संप्रत्यपि अकालमृत्युनिवारणं श्रूयते — केषांचित् संघट्टनादिदुर्घटनाभिः अधिकरूपेण रक्तस्रावे संजाते आंग्लवैद्याः परस्य रक्तं तस्य मरणासन्नस्य शरीरे प्रवेश्य जीवनदानं ददति। हृदयरोगस्यापि शल्यचिकित्सां कृत्वा आरोग्यं जीवनं च यच्छन्ति। केषांचित् रुग्णानां नेत्रादीन् अवयवानपि परिवर्त्य स्वस्थं कुर्वन्ति, न चैषामपलापं कर्तुं शक्यते।

जिनभक्त्या महद्जाप्याद्यनुष्ठानेन सिद्धचक्र कल्पद्रुम-इन्द्रध्वजादिमहामण्डल-विधानैश्च बहूनि दुःखानि नश्यन्ति अकालमृत्युमपि जित्वा पूर्णायुः भुञ्जन्ति जनाः।

एका कथापि श्रीशांतिनाथपुराणे पठ्यते—

एकदा श्रीविजयनरेशस्य सभायामागत्य केनचित् निमित्तज्ञेन कथितं—अस्य पोदनपुरनरेशस्य अद्यप्रभृति सप्तमे दिवसे अशनिपातेन मृत्युर्भविष्यति। राज्ञा तस्यापमृत्योर्निवारणार्थं राज्यं त्यक्त्वा जिनालयं गत्वा महतीं जिनपूजां चकार। ततः तस्याकालमृत्युरभूत्वा राज्यसिंहासनस्थमूर्त्तेः शतखण्डानि बभूव।

उक्तं च—

''एकदागामुकः कश्चिद् दृष्ट्वा श्रीविजयं द्विजः। सिंहासनस्थमित्याह रहसि प्राप्य चासनम्।।५२।। इतः पौदननाथस्य सप्तमे वासरे दिवः। मूर्ध्नि प्रध्वनन्नुच्चैरशनैः पतिताशनिः।।५३।। इत्युक्त्वा विरते वाणीं तस्मिन् पप्रच्छ स स्वयं। कस्त्वं किमभिधानो वा कियज्ज्ञानं तवेति तम् ।।५४।। इति पृष्टः स्वयं राज्ञा ततोऽवादीत्स धीरधीः। बंधुरं सिंधुदेशेऽस्ति पद्मिनीखेटकं पुरम्।।५५।। तस्मादमोघजिह्वाख्यस्त्वां द्विजातिरिहागमम्। पुत्रो विशारदस्याहं ज्योतिर्ज्ञानविशारदः।।५६।। इत्थमात्मानमावेद्य स्थितिमन्तं विसर्ज्य तं। अप्राक्षीत्सचिवान् राजा स्वरक्षामशनेस्ततः।।५७।। रक्षोपायेषु बहुषु प्रणीतेष्वथ मंत्रिभिः। प्रत्याचिख्यासुरित्याह तां कथां मतिभूषणः।।५८।। कुंभकारकटं नाम शैलेन्द्रोपत्यकं पुरं। अस्ति तत्रावसद् विप्रो दुर्गतश्चंडकौशिकः।।५९।। अभूत्प्रणयिनी तस्य सोमश्रीरिति विश्रुता। भूतान्याराध्य सा प्रापदपत्यं मुण्डकौशिकम् ।।६०।। जिघत्सो रक्षसः कुंभाद्रक्षितुं पुत्रमन्यदा। भूतानामर्पयद् विप्रो गुहायां तैर्न्यधायि सः।।६१।। तं तत्राप्यघद् भीष्मः शिशुमाकस्मिकः शयुः। को वा त्रातुमलं मृत्योर्धर्मं मुक्त्वा शरीरिणां।।६२।। ततः शांतिं विधायासो रक्षोपायो न विद्यते। अस्यापि पौदनेशित्वं निरस्यामो महीपतेः।।६३।। इत्युक्त्वा विरते तस्मिन् राज्यं वैश्रवणे प्रजाः। ताग्नीये स्थापयामास राजा चास्थाज्जिनालये।।६४।। सप्तमेऽहनि संपूर्णे पपाताशनिरम्बरात्। मुकुटालंकृते मूर्ध्नि धनदस्य महीक्षितः।।६५।। ततः श्रीविजयस्तस्मै तन्मनोरथवाञ्छितं। दिदेशामोघजिह्वाय पद्मिनीखेटमेव सः[३८]।।६६।।

अदः कथानकं श्रुत्वा ज्योतिर्विदः शरणं न गन्तव्यं, न च पुरुषार्थविहीनेन भवितव्यं। प्रत्युत जिनभक्ति-पूजा-जाप्यानुष्ठानादिभिः असाताकर्मणां उदयः कृशीकरणीयः। अकालमृत्योरुपरि अपि विजयः प्राप्तव्यः इति सारः गृहीतव्यः।

उदीरणा की अपेक्षा सात कर्मों की आबाधा एक आवलीमात्र है और परभव संबंधी बध्यमान आयु की उदीरणा नियम से नहीं होती है।।१५९।।

इसका अर्थ यह है कि वर्तमानकाल की भुज्यमान आयु की उदीरणा होना शक्य है किन्तु बध्यमान आगामी भव की आयु की उदीरणा नहीं होती है।

राजा श्रेणिक के नरकायु का बंध हो गया था ऐसे बंधी आयु का अपकर्षण हुआ है जो कि चौरासी हजार वर्ष मात्र रह गया है, ऐसा समझना।

भुज्यमान आयु की उदीरणा के विषय में श्रीमान् उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में कहा है—

उपपाद जन्म वाले देव और नारकी चरमोत्तम देहधारी और असंख्यात वर्ष की आयु वाले जीव परिपूर्ण आयु वाले होते हैं अर्थात् इनकी आयु का घात नहीं होता है।।५३।।

चरम शब्द अन्तवाची है, इसलिए उसी जन्म में निर्वाण के योग्य हो उसका ग्रहण करना चाहिए। उत्तम शब्द उत्कृष्टवाची है, इससे चक्रवर्ती आदि का ग्रहण होता है। बाह्य उपघात के निमित्त विष, शस्त्रादि के कारण आयु का ह्रास होता है, वह अपवर्त्य है-अपवर्त्य आयु जिनके है वे अपवर्त्य आयु वाले कहलाते हैं।

प्रश्न—उत्तम देह वाले अंतिम चक्रवर्ती आदि के आयु का अपवर्तन देखा जाता है इसलिए यह लक्षण अव्याप्त है। अंतिम चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त, वासुदेव कृष्ण आदि के आयु का बाह्य के निमित्तवश अपवर्तन देखा गया है अर्थात् इनकी अकालमृत्यु सुनी जाती है और अन्य भी ऐसे लोगों की आयु का बाह्य निमित्तों से ह्रास हुआ है इसलिए यह अव्याप्ति दोष से दूषित है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि यहाँ चरम शब्द में उत्तम विशेषण दिया गया है।

यहाँ कोई पुनः शंका करता है—

अप्राप्त काल में मरण की अनुपलब्धि होने से अकालमरण नहीं है, ऐसा नहीं कहना क्योंकि फलादि के समान-जैसे—कागज, पयाल आदि उपायों के द्वारा आम्र आदि फल अवधारित (निश्चित) परिपाक काल के पूर्व ही पका दिये जाते हैं या परिपक्व हो जाते हैं, ऐसा देखा जाता है। उसी प्रकार परिच्छिन्न (अवधारित) मरणकाल के पूर्व ही उदीरणा के कारण से आयु की उदीरणा होकर अकालमरण हो जाता है।

आयुर्वेद के सामर्थ्य से अकालमरण सिद्ध होता है। जैसे—आयुर्वेद को जानने वाला अतिनिपुण वैद्य यथाकाल वातादि के उदय के पूर्व ही वमन, विरेचन आदि के द्वारा अनुदीर्ण ही कफ आदि दोषों को बलात् निकाल देता है—दूर कर देता है तथा अकालमृत्यु को दूर करने के लिए रसायन आदि का उपदेश देता है। अन्यथा यदि अकालमरण नहीं है तो रसायन आदि का उपदेश व्यर्थ हो जायेगा, किन्तु रसायन आदि का उपदेश है अतः आयुर्वेद के सामर्थ्य से भी अकालमरण सिद्ध होता है।

शंका—केवल दुःख के प्रतीकार के लिए ही औषध दी जाती है ?

समाधान—यह बात नहीं है, अपितु उत्पन्न रोग को दूर करने के लिए और अनुत्पन्न को हटाने के लिए भी दी जाती है। जैसे—औषधि से असाता कर्म दूर किया जाता है, उसी प्रकार विष आदि के द्वारा आयु ह्रास और उसके अनुकूल औषधि से आयु का अपवर्तन देखा जाता है।

शंका—यदि अकालमृत्यु है तो कृतप्रणाश दोष आता है अर्थात् किये हुए का फल नहीं भोगा गया, अकाल में आयु नष्ट हो गई ?

समाधान—ऐसी आशंका भी नहीं है। न तो अकृत कर्म का फल भोगना पड़ता है और न कृत कर्म का नाश ही होता है, अन्यथा मोक्ष नहीं हो सकेगा और न दानादि क्रियाओं के करने का उत्साह ही होगा। दानादिक्रिया के आरंभ के अभाव का प्रसंग आयेगा। किन्तु कृत कर्म कर्त्ता को अपना फल देकर के ही नष्ट होता है। जैसे—गीला कपड़ा फैला देने पर जल्दी सूख जाता है और वही कपड़ा इकट्ठा रखा रहे तो सूखने में बहुत समय लगता है, उसी तरह उदीरणा के निमित्तों से समय के पहले ही आयु झड़ जाती है, यही अकालमृत्यु है।

इसी तत्त्वार्थसूत्र महाग्रंथ के श्लोकवार्तिक महाभाष्य ग्रंथ में श्रीमान् आचार्य विद्यानंद महोदय[४] ने भी कहा है—

अंतरंग में असाता वेदनीय का उदय होने पर और बहिरंग में वात, पित्त आदि विकार के होने पर दुःख-रोग आदि होते हैं, उनके प्रतिपक्षी औषधि के देने पर दुःख-रोग की अनुत्पत्ति—दूर होना रूप प्रतीकार देखा जाता है।

कडुवी आदि औषधि का उपयोग करने से उतने मात्र से पीड़ारूप फल देकर ही असातावेदनीय का उदय खत्म हो जाता है अतः किये हुए कर्म का फल नहीं भोगा—नष्ट हो गया, ऐसा 'कृतप्रणाश' दोष नहीं आता है।

अकाल मृत्यु के विषय में श्री कुंदकुंददेव ने भी कहा है—

विष के भक्षण से, अधिक वेदना से, रक्तक्षय हो जाने से, भय से, शस्त्र लग जाने से—शस्त्रों के घात से, संक्लेश परिणामों से, आहार-भोजन न मिलने से, श्वासोच्छ्वास के रुक जाने से—या रोक लेने से आयु छिद जाती है—अकाल में मरण हो जाता है।।२५।।

पहले छियासी हजार पाँच सौ वर्ष पूर्व महाभारत के युद्ध के समय सबसे अधिक अकालमृत्यु हुई हैं, ऐसा श्री गुणभद्रसूरि ने उत्तरपुराण ग्रंथ में कहा है—

"आगम में जो मनुष्यों का कदलीघात नाम का अकालमरण बतलाया गया है, उसकी अधिक से अधिक संख्या यदि हुई भी तो उस महाभारत के युद्ध में ही हुई थी, ऐसा उस युद्ध के विषय में कहा जाता है।।१०९।।"

वर्तमानकाल में भी नाना प्रकार की आकस्मिक दुर्घटनाएँ सुनी जाती हैं—कहीं भूकंप की दुर्घटना में हजारों मनुष्य और पशु एक साथ मर जाते हैं। कहीं नदी पूर—नदियों के बाढ़ से अनेक गाँव जल में डूब जाते हैं, तब सैकड़ों, हजारों परिवार नष्ट हो जाते हैं। कहीं पर हवाई जहाज के गिरने से ऊपर से नीचे गिरकर सैकड़ों मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। कहीं-कहीं इस प्रकार रेलगाड़ी, हवाई जहाज, बसें, स्कूटर, साइकिल आदि के गिरने, परस्पर टकराने (एक्सीडेंट) आदि की दुर्घटनाओं में अनेकों मनुष्य मर जाते हैं, कहीं बम विस्फोट से मरते हैं, यह सब प्रत्यक्ष में देखा जाता है। यहाँ पर भी जो मनुष्य नाना प्रकार की दुर्घटनाओं से मरते हैं, उनमें तो अधिकांश लोगों का मरण अकालमृत्यु से ही होता है, क्योंकि सभी मरने वालों की एक साथ मृत्यु नहीं आती है, अतः जिनेन्द्रदेव के वचनों पर श्रद्धान करना चाहिए।

इसी प्रकार वर्तमान में अकालमृत्यु के निवारण—दूर करने के उपाय भी सुने जाते हैं—किन्हीं लोगों के संघट्टन—एक्सीडेंट आदि दुर्घटनाओं से अधिकरूप से रक्तस्राव हो जाने से डाक्टर दूसरे का खून उस मरणासन्न के शरीर में चढ़ाकर जीवनदान दे देते हैं—बचा लेते हैं।

हृदय रोग की भी शल्य चिकित्सा—आप्रेशन करके स्वस्थता एवं जीवन देते हैं। किन्हीं रोगियों के नेत्र आदि अवयवों का प्रत्यारोपण करके स्वस्थ कर देते हैं, इनका अपलाप करना—झुठलाना भी शक्य नहीं है।

जिनेन्द्र भगवान की भक्ति से, महान् जाप्य आदि के अनुष्ठान से, सिद्धचक्र, कल्पद्रुम, इन्द्रध्वज आदि महामण्डल विधानों से बहुत से दुःख नष्ट हो जाते हैं, वे लोग अकालमृत्यु को जीतकर पूरी आयु का उपभोग कर लेते हैं।

एक कथा श्री शांतिनाथ पुराण में पढ़ी जाती है—

एक समय श्री विजयनरेश की सभा में आकर किसी निमित्तज्ञानी ने कहा—इस पोदनपुर के राजा की आज से सातवें दिन वज्रपात से मृत्यु होगी। राजा ने अपमृत्यु के निवारण के लिए राज्य का त्याग करके जिनमंदिर में जाकर विशाल—महती जिनेन्द्रदेव की पूजा की। तब उस पूजानुष्ठान के प्रभाव से राजा की अकालमृत्यु न होकर राज्यसिंहासन पर स्थापित पाषाण मूर्ति के सौ टुकड़े हो गये।

शांतिनाथ पुराण में यह कथा इस प्रकार है—एक दिन किसी आगन्तुक ब्राह्मण ने श्रीविजय को सिंहासन पर स्थित देख एकान्त में आसन प्राप्त कर इस प्रकार कहा। आज से सातवें दिन पोदनपुर नरेश के मस्तक पर जोर से गरजता हुआ वज्र वेगपूर्वक

आकाश से गिरेगा। इतना कहकर जब वह चुप हो गया तब श्रीविजय ने उससे स्वयं पूछा कि तुम कौन हो ? किस नाम के धारक हो और तुम्हें कितना ज्ञान है ?

इस प्रकार राजा के द्वारा स्वयं पूछे गये, धीर बुद्धि वाले उस आगन्तुक ब्राह्मण ने कहा कि सिंधु देश में एक पद्मिनीखेट नाम का सुन्दर नगर है। वहाँ से मैं तुम्हारे पास यहाँ आया हूँ अमोघजिह्व मेरा नाम है, मैं विशारद का पुत्र हूँ तथा ज्योतिष ज्ञान का पण्डित हूँ। इस प्रकार अपना परिचय देकर बैठे हुए उस ब्राह्मण को राजा ने विदा किया। पश्चात् मंत्रियों से वज्र से अपनी रक्षा का उपाय पूछा। तदनन्तर मंत्रियों ने बहुत सारे रक्षा के उपाय बतलाये, परन्तु उन उपायों का खंडन करने की इच्छा रखते हुए मतिभूषण मंत्री ने इस प्रकार एक कथा कही—

गिरिराज के निकट एक कुंभकारकट नाम का नगर है। उसमें चण्डकौशिक नाम वाला एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था। 'सोमश्री' इस नाम से प्रसिद्ध उसकी स्त्री थी। उसने भूतों की आराधना कर एक मुण्डकौशिक नाम का पुत्र प्राप्त किया। कुंभ नाम का राक्षस उस पुत्र को खाना चाहता था अतः उससे रक्षा के लिए ब्राह्मण ने वह पुत्र भूतों को दे दिया और भूतों ने उसे गुहा में रख दिया। परन्तु वहाँ भी अकस्मात् आये हुए एक भयंकर अजगर ने उस पुत्र को खा लिया अतः ठीक ही है क्योंकि धर्म को छोड़कर मृत्यु से प्राणियों की रक्षा करने के लिए कौन समर्थ है ? इसलिए शांति को छोड़कर रक्षा का अन्य उपाय नहीं है। फिर भी हम इनके पोदनपुर के स्वामित्व को दूर कर दें अर्थात् इनके स्थान पर किसी अन्य को राजा घोषित कर दें।

इस प्रकार कहकर जब मतिभूषण मंत्री चुप हो गया तब प्रजा ने ताम्बे की प्रतिमा बनाकर उसे राज्य सिंहासन पर स्थापित कर दिया और राजा जिनालय में स्थित हो गया। सातवां दिन पूर्ण होते ही राजा की प्रतिमा के मुकुटविभूषित मस्तक पर आकाश से वज्र गिरा अर्थात् वह राज्यसिंहासन की प्रतिमा वज्रपात से नष्ट हो गई। तदनन्तर (मंदिर में अनुष्ठान करते हुए सुरक्षित रहे राजा) श्रीविजय ने उस अमोघजिह्व नामक आगन्तुक ब्राह्मण के लिए उसका मनचाहा पद्मिनीखेट नगर ही दे दिया।

इस कथानक को सुनकर ज्योतिषियों की शरण में नहीं जाना चाहिए और न पुरुषार्थहीन होना चाहिए, प्रत्युत् जिनेन्द्रदेव की भक्ति, पूजा-विधानानुष्ठान, जाप्यानुष्ठान आदि से असाता कर्मों के उदय को कम करना चाहिए और अकालमृत्यु पर भी विजय प्राप्त करना चाहिए, यहाँ यही सार लेना है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. १७३ से १७८)

९०. सिद्धान्त नवनीत

आगाल-प्रत्यागाल के लक्षण

प्रथमस्थितेः द्वितीयस्थितेश्च तावत् आगालप्रत्यागालौ यावत् आवलिकाप्रत्यावलिके च शेषे इति।

प्रथमस्थिति से और द्वितीयस्थिति से तब तक आगाल और प्रत्यागाल होते रहते हैं जब तक कि आवली और प्रत्यावलीमात्र काल शेष रह जाता है।

विशेषार्थ— अपकर्षण के निमित्त से द्वितीयस्थिति के कर्मप्रदेशों का प्रथमस्थिति में आना आगाल कहलाता है। उत्कर्षण के निमित्त से प्रथमस्थिति के कर्मप्रदेशों का द्वितीयस्थिति में जाना प्रत्यागाल कहलाता है। 'आवली' ऐसा सामान्य से कहने पर भी प्रकरणवश उसका अर्थ उदयावली लेना चाहिये तथा उदयावली से ऊपर के आवलीप्रमाण काल को द्वितीयाली या प्रत्यावली कहते हैं। जब अन्तरकरण करने के पश्चात् मिथ्यात्व की स्थिति आवलि-प्रत्यावलीमात्र रह जाती है, तब आगाल-प्रत्यागालरूप कार्य बन्द हो जाते हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. २०६)

९१. सिद्धान्त नवनीत

देशोपशम व सर्वोपशम के लक्षण

अनादिमिथ्यादृष्टेः सम्यक्त्वस्य प्रथमवारं लाभः सर्वोपशमेन भवति। तथा विप्रकृष्टसादिमिथ्यादृष्टेः जीवस्यापि प्रथमोपशमसम्यक्त्वस्य लाभः सर्वोपशमेनैव। किन्तु यो जीवः सम्यक्त्वात् प्रच्युत्य पुनः सत्त्वरं सम्यक्त्वं गृण्हाति, सः सर्वोपशमेन देशोपशमेन वा भजितव्यः।

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के सम्यक्त्व का प्रथम बार लाभ सर्वोपशम से होता है। इसी प्रकार विप्रकृष्ट जीव के अर्थात् जिसने पहले कभी सम्यक्त्वप्रकृति एवं सम्यग्मिथ्यात्व कर्म की उद्वेलना कर बहुत काल तक मिथ्यात्व सहित परिभ्रमण कर पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त किया है, ऐसे जीव के प्रथमोपशमसम्यक्त्व का लाभ भी सर्वोपशम से होता है किन्तु जो जीव सम्यक्त्व से गिरकर अभीक्ष्ण अर्थात् जल्दी ही पुनः-पुनः सम्यक्त्व को ग्रहण करता है वह सर्वोपशम और देशोपशम से भजनीय है। मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति, इन तीनों कर्मों के उदयाभाव को सर्वोपशम कहते हैं तथा सम्यक्त्वप्रकृतिसम्बन्धी देशघाती स्पर्धकों के उदय को देशोपशम कहते हैं। अनादि

मिथ्यादृष्टि के प्रथमोपशमसम्यक्त्व के अनन्तर मिथ्यात्व का उदय होता है, किन्तु सादि मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व भजितव्य है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. २१०)

९२. सिद्धान्त नवनीत

श्रीकृष्ण एवं विवर्द्धन कुमार आदि के नाम

अथवा 'जिणा' इति उक्ते 'चोद्दसपुव्वहरा' गृहीतव्याः। केवली इति भणिते केवलज्ञानिनः तीर्थकर-कर्मोदयविरहिताः गृहीतव्याः, 'तित्थयरा' इति उक्ते तीर्थकरनामकर्मोदयजनिताष्टमहा-प्रातिहार्य-चतुस्त्रिंशदतिशयसहितानां ग्रहणं। एतेषां त्रयाणामपि पादमूले दर्शनमोहक्षपणं प्रस्थापयन्ति इति। अत्र जिनशब्दस्य आवर्त्तिं कृत्वा जिनाः दर्शनमोहक्षपणं प्रस्थापयन्ति इति वक्तव्यं, अन्यथा तृतीयपृथिवीतः विनिर्गतानां कृष्णादीनां[३] तीर्थकरत्वानुपपत्तेः इति केषांचित् आचार्याणां व्याख्यानं। एतेन व्याख्यानाभिप्रायेण दुःषमा-अतिदुःषमा-सुषमासुषमा-सुषमाकालेषु उत्पन्नानां एव दर्शनमोहनीयक्षपणा नास्ति, अवशेषद्वयोरपि कालयोः उत्पन्नानामस्ति, एकेन्द्रियात् आगत्य तृतीयकालोत्पन्नवर्द्धनकुमारादीनां[३९] दर्शनक्षपणदर्शनात्। इदं चैवात्र व्याख्यानं प्रधानं कर्तव्यं।

यहाँ पर 'जिन' शब्द की आवृत्ति करके अर्थात् दुबारा ग्रहण करके, जिन दर्शनमोहनीयकर्म का क्षपण प्रारंभ करते हैं, ऐसा कहना चाहिए, अन्यथा तीसरी पृथिवी से निकले हुए कृष्ण आदिकों के तीर्थंकरत्व नहीं बन सकता है, ऐसा किन्हीं आचार्यों का व्याख्यान है। इस व्याख्यान के अभिप्राय से दुःषमा, अतिदुःषमा, सुषमा-सुषमा और सुषमा कालों में उत्पन्न हुए जीवों के ही दर्शनमोहनीय की क्षपणा नहीं होती है, अवशिष्ट दोनों कालों में उत्पन्न हुए जीवों के दर्शनमोह की क्षपणा होती है। इसका कारण यह है कि एकेन्द्रिय पर्याय से आकर (इस अवसर्पिणी के) तीसरे काल में उत्पन्न हुए वर्द्धनकुमार आदिकों के दर्शनमोह की क्षपणा देखी जाती है। यहाँ पर यह व्याख्यान ही प्रधानतया ग्रहण करना चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. २१४)

९३. सिद्धान्त नवनीत

म्लेच्छखण्डों के मनुष्यों का संयमस्थान

अकर्मभूमिजस्य-पंचम्लेच्छखंडनिवासिनां संयमं प्रतिपद्यमानस्य जघन्यं संयमस्थानमनन्तगुणं। तस्यैवोत्कृष्टं संयमं प्रतिपद्यमानस्य संयमस्थानमनन्तगुणं।

कर्मभूमिजस्य संयमं प्रतिपद्यमानस्य उत्कृष्टं संयमस्थानमनन्तगुणं।

संयम को प्राप्त करने वाले अकर्मभूमिज, अर्थात् पाँच म्लेच्छ खंडों में रहने वाले, मनुष्य का जघन्य संयमस्थान अनन्तगुणा है। संयम को प्राप्त करने वाले उसका ही उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है। संयम को प्राप्त करने वाले कर्मभूमिज (आर्य) मनुष्य का उत्कृष्ट संयमस्थान अनन्तगुणा है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. २२१)

९४. सिद्धान्त नवनीत

उपशमश्रेणी चार बार एवं सकलसंयम बत्तीस बार होते हैं

उपशमश्रेणिं कतिवारां लब्धुं शक्नोति इति पृच्छायां कथ्यते—

चत्तारि वारमुवसमसेढिं समरुहदि खविदकम्मंसो।
बत्तीसं वाराइं, संजममुवलहिय णिव्वादि[४०]।।६१९।।

भगवान् ऋषभदेवः पूर्वभवे द्विवारं उपश्रेणिमारुरोह।

उपशमश्रेणी कितनी बार प्राप्त करना शक्य है ? ऐसा प्रश्न होने पर कहते हैं—

कर्मों के अंश का क्षपण करने वाले ऐसे क्षपितकर्मांश मुनि उपशम श्रेणी पर अधिक से अधिक चार बार ही चढ़ सकते हैं। सकल संयम को उत्कृष्टरूप से बत्तीस बार प्राप्त कर सकते हैं पुनः नियम से मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।।६१९।।

भगवान ऋषभदेव पूर्व भव में दो बार उपशम श्रेणी में चढ़े हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. २२४)

९५. सिद्धान्त नवनीत

असंख्यातों द्वीपों-समुद्रों में सम्यक्त्वी होते हैं

बहुषु दिवसपृथक्त्वगतेषु गर्भोपपन्नाः पर्याप्ताः पंचेन्द्रियतिर्यञ्चः प्रथमसम्यक्त्व-मुत्पादयितुं योग्या भवन्ति। इमे च असंख्यातेषु अपि द्वीपेषु असंख्यातेषु समुद्रेष्वपि प्रथमसम्यक्त्वग्रहणयोग्या भवंति।

सार्धद्वयद्वीपेषु कर्मभूमिजा भोगभूमिजा तिर्यञ्चः संति। लवणोदधि-कालोदसमुद्रयोः तिर्यञ्चः सन्ति। शेषद्वीपेषु भोगभूमिजाः तिर्यञ्चः सन्ति। अंतिमार्धापरद्वीपे अन्तिमसमुद्रे च कर्मभूमिजाः तिर्यञ्चः सन्ति।

भोगभूमिप्रतिभागिकेषु समुद्रेषु मत्स्या मकरा वा न सन्ति, आर्षेषु तत्र त्रसजीवप्रतिषेधः कृतः पुनस्तत्र प्रथमसम्यक्त्वोत्पत्तिर्न युज्यते ?

नैष दोषः, पूर्ववैरिदेवैः कर्मभूमिजतिरश्चः उत्थाप्य तत्र इमे मत्स्यमकरादयः प्रक्षिप्यन्ते कदाचित् अतस्तेषां क्षिप्तपंचेन्द्रियतिरश्चां तत्र संभवोऽस्ति इति ज्ञातव्यं।

यहाँ पर 'दिवस पृथक्त्व' कहने से सात या आठ दिवस नहीं लेना। यहाँ यह पृथक्त्व शब्द विपुलता का वाचक है, इसलिए बहुत से दिवस पृथक्त्व के जाने पर गर्भ से उत्पन्न, पर्याप्तक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने के योग्य होते हैं। ये असंख्यातों भी द्वीपों में और असंख्यातों समुद्रों में भी प्रथम सम्यक्त्व के ग्रहण के योग्य होते हैं।

ढाई द्वीपों में कर्मभूमिज और भोगभूमिज दोनों प्रकार के तिर्यंच हैं। लवणोदधि और कालोदधि समुद्रों में तिर्यंच हैं। शेष द्वीपों में भोगभूमिज तिर्यंच होते हैं। अंतिम आधे उधर के द्वीप में और अंतिम समुद्र में कर्मभूमिज तिर्यंच होते हैं।

शंका—चूँकि 'भोगभूमि के प्रतिभागी समुद्रों में मत्स्य या मगर नहीं हैं', ऐसा वहाँ त्रस जीवों का प्रतिषेध किया गया है, इसलिए उन समुद्रों में प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति मानना उपयुक्त नहीं है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि पूर्वभव के बैरी देवों के द्वारा उन समुद्रों में डाले गये मछली, मगर आदि पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की संभावना है। कदाचित् उन डाले गये पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में सम्यक्त्व संभव है, ऐसा जानना चाहिए।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. २४३)

९६. सिद्धान्त नवनीत

तीर्थंकर के गर्भ-जन्म-तपकल्याणक में भी जिनबिम्बदर्शन होता है।

जिनमहिमदर्शने तस्यान्तर्भावात्, किंच जिनबिंबेन विना जिनमहिमा अनुपपत्तेः।

स्वर्गावतरण-जन्माभिषेक-परिनिष्क्रमणजिनमहिमाः जिनबिंबेन विना क्रियमाणाः दृश्यन्ते, अतः जिनमहिमादर्शने जिनबिंबदर्शनस्य अविनाभावो नास्ति ?

एतन्नाशंकनीयं, तत्रापि भावि जिनबिंबस्य दर्शनोपलंभात् । अथवा एतासु महिमासु उत्पद्यमान-प्रथमोपशमसम्यक्त्वं न जिनबिंबदर्शननिमित्तं, किंतु जिनगुणश्रवणनिमित्तमिति।

जिनबिम्बदर्शन का जिनमहिमादर्शन में ही अन्तर्भाव हो जाता है, कारण कि जिनबिम्ब के बिना जिनमहिमा की उपपत्ति बनती नहीं हैं।

शंका—स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक और परिनिष्क्रमणरूप जिनमहिमाएं जिनबिम्ब

के बिना की जाने वाली देखी जाती हैं, इसलिए जिनमहिमादर्शन में जिनबिम्बदर्शन का अविनाभाव नहीं है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्वर्गावतरण, जन्माभिषेक और परिनिष्क्रमणरूप जिनमहिमाओं में भी भावी जिनबिम्ब का दर्शन पाया जाता है। अथवा, इन महिमाओं में उत्पन्न होने वाला प्रथम सम्यक्त्व जिनबिम्बदर्शननिमित्तक नहीं है, किन्तु जिनगुणश्रवणनिमित्तक है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. २५१)

९७. सिद्धान्त नवनीत

जातिस्मरण और देवर्द्धिदर्शन में अन्तर है

देवर्द्धिदर्शनं जातिस्मरणे किन्न प्रविशति ?

न प्रविशति, आत्मनः अणिमादिऋद्धीः दृष्ट्वा एताः ऋद्धयः जिनप्रज्ञप्तधर्मानुष्ठानात् जाताः इति प्रथमसम्यक्त्वप्राप्तिः जातिस्मरणनिमित्ता भवति। किंतु यदा सौधर्मैंद्रादिदेवानां महर्द्धीः दृष्ट्वा एताः सम्यग्दर्शनसंयुक्तसंयमफलेन जाताः, अहं पुनः सम्यग्दर्शनविरहितद्रव्यसंयमफलेन वाहनादिनीचदेवेषु उत्पन्नः, इति ज्ञात्वा यत् प्रथमसम्यक्त्वग्रहणं जायते तत् देवर्द्धिदर्शननिमित्तकं। तन्न द्वयोरेकत्वमिति।

किं च जातिस्मरणं तु उत्पन्नप्रथमसमयप्रभृति अन्तर्मुहूर्तकालाभ्यन्तरे एव भवति। देवर्द्धिदर्शनं पुनः कालान्तरे चैव भवति—अन्तर्मुहूर्तानन्तरमेव, तेन न द्वयोरेकत्वं।

शंका—देवर्द्धिदर्शन का जातिस्मरण में समावेश क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं होता, क्योंकि अपनी अणिमादिक ऋद्धियों को देखकर जब यह विचार उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियाँ जिन भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म के अनुष्ठान से उत्पन्न हुई हैं, तब प्रथम सम्यक्त्व की प्राप्ति जातिस्मरण निमित्तक होती है। किन्तु जब सौधर्मेन्द्रादिक देवों की महाऋद्धियों को देखकर यह ज्ञान उत्पन्न होता है कि ये ऋद्धियाँ सम्यग्दर्शन से संयुक्त संयम के फल से प्राप्त हुई हैं, किन्तु मैं सम्यक्त्व से रहित द्रव्यसंयम के फल से वाहनादिक नीच देवों में उत्पन्न हुआ हूँ तब प्रथम सम्यक्त्व का ग्रहण देवर्द्धिदर्शननिमित्तक होता है। इससे जातिस्मरण और देवर्द्धिदर्शन, ये प्रथम सम्यक्त्वोत्पत्ति के दोनों कारण एक नहीं हो सकते तथा जातिस्मरण उत्पन्न होने के प्रथम समय से लगाकर अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर ही होता है। किन्तु देवर्द्धिदर्शन उत्पन्न होने के समय से अन्तर्मुहूर्तकाल के पश्चात् ही होता है। इसलिए भी उन दोनों कारणों में एकत्व नहीं है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. २५१)

९८. सिद्धान्त नवनीत

तिर्यंच भी सम्यक्त्व एवं संयमासंयम के साथ बारहवें स्वर्ग से ऊपर सोलहवें स्वर्ग तक जा सकते हैं

संज्ञिनः पर्याप्ताः पंचेंद्रियतिर्यञ्चः मिथ्यादृष्टयः तिर्यक्पर्यायेभ्यः कालगतसमानाः विनष्टाः सन्तः, तत्पर्यायेभ्यः मृत्वा चतसृः अपि गतीः प्राप्नुवन्ति। देवगतिषु भवनत्रिकेषु गच्छंति, सौधर्मादिसहस्त्रारकल्पपर्यंतं गन्तुं शक्नुवन्ति नोपरि, सम्यक्त्वाणुव्रतैः विना आनतादिषु कल्पेषु गमनाभावात्।

संज्ञी, पर्याप्त, पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टी तिर्यंच तिर्यंचपर्याय से काल—मरण करके चारों ही गतियों को प्राप्त करते हैं। देवगति में भवनत्रिकों में जाते हैं, सौधर्म स्वर्ग से लेकर सहस्त्रार स्वर्ग पर्यंत जा सकते हैं। इसके ऊपर नहीं, क्योंकि आगे के आनत आदि कल्पों में सम्यक्त्व सहित अणुव्रतों के बिना जाना संभव नहीं है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. २७२)

९९. सिद्धान्त नवनीत

असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच भी भवनवासी व व्यंतर देवों में जा सकते हैं

एवमेव श्रीअकलंकदेवेन कथितं—

तैर्यग्योनेषु असंज्ञिनः पर्याप्ताः पंचेन्द्रियाः संख्येयवर्षायुष्षु अल्पशुभपरिणामवशेन पुण्यबंधमनुभूय भवनवासिषु व्यन्तरेषु च उत्पद्यन्ते[४१]।

तत्त्वार्थवार्तिक ग्रंथ में श्री अकलंकदेव ने भी कहा है—

तिर्यंच योनि में रहने वाले असंज्ञी, पर्याप्त, पंचेन्द्रिय जीव अल्पशुभ परिणाम के वश से पुण्यबंध का अनुभव करके संख्यात वर्ष की आयु वाले भवनवासी और व्यंतर देवों में उत्पन्न हो जाते हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. २७३)

१००. सिद्धान्त नवनीत

नरक से निकलकर कोई भी बलभद्र, नारायण और चक्रवर्ती नहीं होते हैं

तिरिक्खेसु उववण्णल्लया तिरिक्खा केइं छ उप्पाएंति।।२१९।।

मणुसेसु उववण्णल्लया मणुस्सा केइमेक्कारस उप्पाएंति—केइमाभिणि-बोहिय-

णाणमुप्पाएंति, केइं सुदणाणमुप्पाएंति, केइं मणपज्ज-वणाणमुप्पा-एंति, केइमोहिणाण-मुप्पाएंति, केइं केवलणाणमुप्पाएंति, केइं सम्मामिच्छत्त-मुप्पाएंति, केइं सम्मत्तमुप्पाएंति, केइं संजमासंजममुप्पाएंति, केइं संजममुप्पाएंति। णो बलदेवत्तं णो वासुदेवत्तमुप्पाएंति, णो चक्कवट्टि-मुप्पाएंति। केइं तित्थयरत्तमुप्पाएंति, केइमंतयडा होदूण सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वाणयंति सव्वदुक्खाणमंतं परिविजाणंति।।२२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमोऽस्ति। उपरि तिसृभ्यः उद्वर्तिताः तिर्यक्षु उत्पन्नाः केचित् मतिश्रुतावधिज्ञानानि सम्यग्मिथ्यात्वसम्यक्त्वसंयमा-संयमांश्चोत्पादयन्ति। मनुष्येषु उत्पन्नाः केचित् एकादशगुणान् उत्पादयन्ति। मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलज्ञानानि, सम्यग्मिथ्यात्वं सम्यक्त्वं संयमासंयमं संयमं च तीर्थकरत्वं मोक्षं चापि, किंतु नरकेभ्यः निर्गत्य केचिदपि बलदेववासुदेव चक्रधरत्वानि नोत्पादयन्ति।**

ऊपर की तीन पृथिवियों से निकलकर तिर्यंचों में उत्पन्न होने वाले तिर्यंच कोई छह गुणों को उत्पन्न करते हैं।।२१९।।

ऊपर की तीन पृथिवियों से निकलकर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले मनुष्य कोई ग्यारह गुणों को उत्पन्न करते हैं—कोई आभिनिबोधिक ज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई श्रुतज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई अवधिज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई केवलज्ञान उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यग्मिथ्यात्व उत्पन्न करते हैं, कोई सम्यक्त्व उत्पन्न करते हैं, कोई संयमासंयम उत्पन्न करते हैं और कोई संयम उत्पन्न करते हैं। किन्तु वे जीव न बलदेवत्व उत्पन्न करते, न वासुदेवत्व उत्पन्न करते, और न चक्रवर्तित्व उत्पन्न करते हैं। कोई तीर्थकरत्व उत्पन्न करते हैं, कोई अन्तकृत् होकर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, वे सर्व दुःखों के अन्त होने का अनुभव करते हैं।।२२०।।

ऊपर की तीन पृथिवियों से निकलकर तिर्यंचों में उत्पन्न हुए कोई जीव मति, श्रुत, अवधिज्ञान, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और संयमासंयम इन छह गुणों को उत्पन्न करते हैं। मनुष्यों में उत्पन्न हुए कोई जीव ग्यारहों गुणों को उत्पन्न कर लेते हैं—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, संयमासंयम, संयम, तीर्थकरत्व और मोक्ष, इन ग्यारह स्थानों को भी प्राप्त कर सकते हैं, किन्तु नरक से निकलकर कोई भी बलभद्र, नारायण और चक्रवर्ती नहीं हो सकते हैं।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. ३०५-३०६)

१०१. सिद्धान्त नवनीत

संसारी जीवों में सर्वोत्कृष्ट सुख व सर्वाधिक दुःख कहाँ है ?

संसारिणां जीवानां सर्वश्रेष्ठं सुखं सर्वार्थसिद्धौ सर्वाधिकं दुःखं च सप्तमीपृथिवीगतनारकाणां।

उक्तं श्रीजिनसेनाचार्येण—

सुकृतफलमुदारं विद्धि सर्वार्थसिद्धौ, दुरितफलमुदग्रं सप्तमीनारकाणाम्।
शमदमयमयोगैरग्रिमं पुण्यभाजां, अशमदमयमानां कर्मणा दुष्कृतेन[९२]।।२२०।।

संसारी जीवों में सर्वश्रेष्ठ सुख सर्वार्थसिद्धि में है और सबसे अधिक दुःख सातवें नरक में रहने वाले नारकी जीवों में होता है।

श्री जिनसेनाचार्य देव ने कहा भी है—

पुण्यकर्मों का उत्कृष्ट फल सर्वार्थसिद्धि में और पापकर्मों का उत्कृष्ट फल सप्तम पृथिवी के नारकियों के जानना चाहिए। पुण्य का उत्कृष्ट फल परिणामों को शान्त रखने, इन्द्रियों का दमन करने और निर्दोष चारित्र पालन करने से पुण्यात्मा जीवों को प्राप्त होता है और पाप का उत्कृष्ट फल परिणामों को शान्त नहीं रखने, इन्द्रियों का दमन नहीं करने तथा निर्दोष चारित्र पालन नहीं करने से पापी जीवों को प्राप्त होता है।

(षट्खण्डागम-सिद्धान्तचिंतामणिटीका, पु. ६, पृ. ३१८)

भक्तिराग से स्तुति

एवमए सुदपवरा, भत्तीराएण संत्थुया तच्चा।
सिग्घं मे सुदलाहं, जिणवरवसहा पयच्छंतु।।9।।

(श्री कुंदकुंददेवकृत–श्रुतभक्ति गाथा-11)

अर्थ–इस प्रकार मैंने 'भक्ति के राग' से द्वादशांगरूप श्रेष्ठ श्रुत का स्तवन किया है। जिनवर वृषभदेव या जिनवरों में श्रेष्ठ सभी तीर्थंकरदेव मुझे शीघ्र ही श्रुत का लाभ देवें।

भावार्थ–श्रुतभक्ति की ग्यारह गाथाओं में द्वादशांगरूप श्रुत की वंदना करके आचार्यदेव ने श्रुत के लाभ की याचना की है तथा यह भी कहा है कि मैंने 'भक्तिराग' से स्तवन किया है। टीकाकार श्री प्रभाचन्द्राचार्य ने ''भक्त्यनुरागाभ्यां—श्रद्धाप्रीतिभ्यां'' भक्ति और अनुराग—'श्रद्धा और प्रीति से' ऐसा अर्थ किया है जिससे श्री कुन्दकुन्ददेव भी भक्ति के राग से सहित थे ऐसा स्पष्ट हो जाता है।

प्रशस्ति

–शंभु छंद–

त्रिभुवन में धर्म वही उत्तम, जो श्रेष्ठ सुखों में धरता है।
सांसारिक सभी सौख्य देकर, मुक्ती पद तक पहुँचाता है।।
इस रत्नत्रयमय धर्मतीर्थ के, कर्ता तीर्थंकर बनते।
इनको प्रणमूँ मैं बार बार, ये सर्व आधि व्याधी हरते।।1।।
श्री गौतमगणधर को प्रणमूँ, मां सरस्वती को नमन करूँ।
श्री धरसेनाचार्य गुरु को कोटि कोटि नित नमन करूँ।।
श्री पुष्पदंत आचार्य भूतबलि सूरी को शिरनत प्रणमूँ।
श्री वीरसेन आचार्य नमूँ षट्खण्डागम को नित्य नमूँ।।2।।
श्री महावीर के शासन में, श्री कुंदकुंद आम्नाय प्रथित।
सरस्वती गच्छ गण बलात्कार से, जैन दिगम्बर धर्म विशद।।
इस परम्परा में सदी बीसवीं, के आचार्य प्रथम गुरुवर।
चारित्र चक्रवर्ती श्री शान्तीसागर सबके गुरू प्रवर।।3।।
इन प्रथमशिष्य पट्टाधिप श्री, गुरु वीरसागराचार्य हुए।
मुझको ये आर्यिका ज्ञानमती, करके अन्वर्थक नाम दिये।।
इन रत्नत्रय दाता गुरु को, है मेरा वंदन बार बार।
माँ सरस्वती को नित्य नमूँ , जिनका मुझ पर है बहूपकार।।4।।
षट्खण्डागम की सिद्धांतचिंतामणि रची टीका मैंने।
उसमें से सार-सार लेकर नवनीत निकाला है मैंने।।
बीराब्द पचीस शतक चालिस वैशाख शुक्ल तृतिया तिथि में।
यह सिद्धांत नवनीत संकलन पूर्ण किया श्रुत रुचि से मैं।।5।।
इस दुषमकाल के अन्त समय तक, जैनधर्म जयवंत रहे।
इस हस्तिनागपुर में तब तक, यह जंबूद्वीप स्थायि रहे।।
यह सिद्धान्त नवनीत ग्रंथ तब तक भव्यों को पुष्ट करे।
मुझ 'ज्ञानमति' केवल करके, मुझ में जिनगुण संपत्ति भरे।।6।।

–दोहा–

षट्खण्डागम ग्रंथ को नमूं नमूं शत बार।
धवला टीका को नमूं, खुले मोक्ष के द्वार।।7।।

टिप्पणी

षट्खण्डागम (सिद्धान्त चिन्तामणि टीका) पुस्तक १ से ६ तक की

१. पंचमेण इति पाठान्तरं। २. षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित) पुस्तक १, पृ. ५५। ३. षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित) पुस्तक १, पृ. ५४। ४. 'मंगलमंत्र णमोकार-एक अनुचिन्तन' पुस्तक, पृ. ४३। ५. 'मंगलमंत्र णमोकार' : एक अनुचिन्तन पुस्तक, पृ. ४४। ६. षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित) पुस्तक १, पृ. ६। ७. कसायपाहुड़ पु. १, पृ. ३। ८-९. जिनस्तोत्रसंग्रह (वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर से प्रकाशित)। १०. जिनस्तोत्रसंग्रह (वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर से प्रकाशित)। ११. श्रुतस्कंधविधान (वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर से प्रकाशित)। १२. गोम्मटसार जीवकाण्ड, जीवतत्त्वप्रदीपिका टीकायां, गाथा ३३४। १३. गोम्मटसार जीवकाण्ड, पृ. ५३१-५६५। १४. षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित) पुस्तक १, पृ. २०। १५. "संजदासंजदट्ठाणे" मु प्रतौ एतावदेव पाठः उपलभ्यते। १६. धवला, पुस्तक १, पृ. ३३५। १७. सिद्धभक्ति प्राकृत। १८. धवलाटीकासमन्वित षट्खण्डागम पु. २, पृ. ६५७। १९. धवलाटीकासमन्वित षट्खण्डागम पु. २, पृ. ६०९-६१०। २०. धवलाटीका समन्वित षट्खंडागम पु. २, पृ. ८२२। २१. षट्खण्डागम पु. ४ (धवला टीका समन्वित) पृ. २३। २२. षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित) पु. ३, पृ. १। २३. अत्र कापोतलेश्यापदेन वातवलयो गृह्यते उक्तं च टिप्पण्यां-"काउलेस्सियाए लग्गो णाम तदियो वादवलयो।।९।। सूत्र, धवला, पत्र ८८१-८८२। २४. षट्खण्डागम पु. ३ (धवला टीका समन्वित) पृ. ९९। २५. षट्खण्डागम पु. ३ (धवला टीका समन्वित) पृ. १५७। २६. तत्त्वार्थवृत्ति अ. १, सूत्र ८। २७. ज्ञानार्णव। २८. तत्त्वार्थवृत्ति अ. १, सूत्र ८। २९. धवला पुस्तक ४, पृ. ४२३। ३०-३१. षट्खण्डागम, धवलाटीका समन्वित, पु. ६, पृ. १५१। ३२. गोम्मटसारकर्मकांड गाथा १५९। ३३. तत्त्वार्थवार्तिक अ. २, सूत्र ५३ की टीका के आधार से। ३४. एक हजार वर्ष पूर्व ये विद्यानंद आचार्य हुए हैं। इन्होंने ही अष्टसहस्री एवं श्लोकवार्तिक ग्रंथ लिखे हैं। ३५. तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, मूल मुद्रित, प्रति पृ. ३४३। ३६. भावपाहुड। ३७. उत्तरपुराण पर्व ७१, पृ. ३८२, श्लोक १०९। ३८. श्री शांतिनाथपुराण, सप्तमसर्ग। ३९. षट्खण्डागम धवला टीका, पु. ६, पृ. २४७। ४०. गोम्मटसार कर्मकांड गाथा ६१९। ४१. तत्त्वार्थवार्तिक। ४२. महापुराण पर्व ११।

भजन

षट्खण्डागम वन्दना गीत

रचयित्री-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

तर्ज-मेरा नम्र प्रणाम है.....

वन्दन बारम्बार है,
षट्खण्डागम ग्रन्थराज को, वन्दन बारम्बार है।
श्री सिद्धान्त सुचिन्तामणि, टीका जिसमें साकार है।।
षट्खण्डागम.....।। टेक.।।

वीरप्रभू के शासन का, सबसे पहला यह ग्रन्थ है।
लिखने वाले पुष्पदन्त, अरु भूतबली निर्ग्रन्थ हैं।।
श्रीधरसेनाचार्य से जिनको, मिला ज्ञान भण्डार है।
षट्खण्डागम ग्रन्थराज को, वन्दन बारम्बार है।।1।।

वीरसेन सूरी ने उस पर, धवला टीका रच डाली।
प्राकृत संस्कृत के वचनों में, मोती माल बना डाली।।
गूढ़ रहस्यों सहित ग्रन्थ वह, विद्वत्मणि सरताज है।
षट्खण्डागम ग्रन्थराज को, वन्दन बारम्बार है।।2।।

गणिनी माता ज्ञानमती ने, नव इतिहास बनाया है।
संस्कृत टीका सरल रची, सिद्धान्तसार समझाया है।।
चिन्तामणि सम चिन्तित फल, देने में जो साकार है।
षट्खण्डागम ग्रन्थराज को, वन्दन बारम्बार है।।3।।

श्रीधरसेन व पुष्पदन्त, आचार्य भूतबलि को वन्दन।
वीरसेन गुरु को वंदूँ, अरु गणिनी ज्ञानमती को नमन।।
इनसे ही 'चंदनामती', यह मिला जिनागम सार है।
षट्खण्डागम ग्रन्थराज को, वन्दन बारम्बार है।।4।।

जिनवाणी स्तुति

रचयित्री–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

हे सरस्वती माता, अज्ञान दूर कर दो।
जग को देकर साता, विज्ञान पूर भर दो।। टेक.।।

श्रुत का भण्डार भरा, तेरे ज्ञान की गंगा में।
जन मन श्रृंगार करा, गुरुवर मुनि चन्दा ने।।
श्रृंगार सहित माता, श्रुतज्ञान पूर्ण कर दो।
जग को देकर साता, विज्ञान पूर भर दो।।1।।

प्रभु वीर की वाणी सुन, गणधर ने संवारा है।
मुनिगण उस पथ पर चल, निज ज्ञान सुधारा है।।
निज ज्ञान किरणदाता, आलोक ज्ञान भर दो।
जग को देकर साता, विज्ञान पूर भर दो।।2।।

चंदन चंदा गंगा, तन शीतल कर सकते।
मुक्ता मालाएँ भी, नहिं मन को हर सकते।।
'चंदनामती' सबको, शारद माँ का वर दो।
जग को देकर साता, विज्ञान पूर भर दो।।3।।

मुक्तक

रचयित्री–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

त्याग तपस्या की मूरत तुम, ज्ञान ध्यान की प्रतिमा हो।
कलियुग की सुकुमार तपस्वी, नारी की गुण गरिमा हो।।
ब्राह्मी माँ के पदचिन्हों पर चलकर लुटा रहीं चंदन।
गणिनी माता ज्ञानमती जी, स्वीकारो मेरा वंदन।।1।।

शांतिसागराचार्य गुरू की वाणी तुमने अपनाई।
वीरसागराचार्य गुरू से ज्ञानमती दीक्षा पाई।।
निन्दा स्तुति में समता, धरतीं हरतीं जग का क्रन्दन।
गणिनी माता ज्ञानमती जी स्वीकारो मेरा वंदन।।2।।

धन्य पिता श्री छोटेलाल जी मात मोहिनी धन्य हुईं।
धन्य हुए वे भगिनी भ्राता मातृभूमि भी धन्य हुई।।
बचपन से पाया तुमने माँ से शास्त्रों का सम्बोधन।
गणिनी माता ज्ञानमती जी स्वीकारो मेरा वंदन।।3।।

रत्नत्रयधारिणी मात तुम, अगणित गुण से मण्डित हो।
चारों अनुयोगों के अध्यन, प्रवचन में तुम पण्डित हो।।
इस युग की माँ सरस्वती, विद्वानों की श्रृंगार सदन।
गणिनी माता ज्ञानमती जी, स्वीकारो मेरा वंदन।।4।।